सिद्धयोग

संस्थापक : योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाई-282002 (आगरा) उ.प्र.

प्रकाशन तिथि : 01.05.2018 मूल्य : एक प्रति : 20/-, द्विवार्षिक : 360/-

वर्ष : 51 अंक : 2 मई 2018

संकल्प बल

श्री देवकीनन्दन विभव

हट जाओ पर्वत मेरे मार्ग से !

माना तुम महान हो पर मेरा संकल्प तुमसे भी महान है।
तुम जितने कठोर हो, मेरा धैर्य उतना ही प्रबल है।
तुम जितने अगम्य हो, मेरा साहस उतना ही तीक्ष्ण है।
तुम जितने अटल हो, मेरा उत्साह उतना ही अचल है
नहीं पर्वत तुम अपने वक्षस्थल से मेरे मार्ग को नहीं रोक सकते
जीवन की असंख्य घड़ियाँ मैं तुम्हें खोद डालने में नष्ट कर दूंगा
मैं स्वयं एक एक पत्थर चुन कर तुम्हें उखाड़ फेंकूंगा
मैं अपने अदम्य साहस से तुम्हारा ऊँचा मस्तक झुका दूंगा
नहीं पर्वत तुम अपने वक्ष स्थल से मेरे मार्ग को नहीं रोक सकते
यौवन के मदमाते झोंके आयेंगे और चले जायगें
यश और वैभव का ज्वार उठेगा और शान्त हो जायगा
पर मैं अपने कार्य में अविछिन्नि जुटा रहूँगा।
नहीं पर्वत शिखर ! तुम अपने वक्ष स्थल से मेरे मार्ग को नहीं रोक सकते!

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 51
अंक 2

मई
2018

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

बैकुण्ठलीलाप्रवरं मनोहरं
नमस्कृतं देवगणैः परं वरम्।
गोपाललीलाभियुतं भजाम्यहं
गोलोकनाथं शिरसा नमाम्यहम्।।

(गर्ग मा 4/8)

अर्थात्

हे प्रभो ! आप बैकुण्ठपुरी में सदा लीला में तत्पर रहने वाले हैं। आपका स्वरूप परम मनोहर है। देवगण सदा आपको नमस्कार करते हैं। आप परमश्रेष्ठ हैं। गो–पालक की लीला में आपकी विशेष रुचि रहती है–ऐसे मैं आपका भजन करता हूँ। साथ ही आप गोलोकधिपति को मैं नमस्कार करता हूँ।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक : आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक : डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक : समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1.	विशेष लेख– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	योगी रघुनन्दन प्रसाद– रमण बाबा उर्फ टाटा बाबा	12
3.	सम्पादकीय	19
4.	श्री मद्भागवत में योग–परिचर्चा– डॉ. विजय सिंह	21
5.	योगी मत्स्येन्द्रनाथ– श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी	25
6.	आश्रम समाचार	31
7.	योग की शिक्षा क्यों?– महात्मा नारायण स्वामी	32
8.	षड्–चक्र वर्णन– रुद्रदत्त चतुर्वेदी	34
9.	योग–सर्वदर्शन–सम्बल– श्री डॉ. बदरी नारायण पञ्चोली	35
10.	योग प्रचार एवं आध्यात्म	39
11.	योग–आसन	40

एक प्रति	: रु.	20.00
वार्षिक शुल्क	: रु.	180.00
द्विवार्षिक	: रु.	360.00
आजीवन	: रु.	1000.00

विशेष लेख

साधना की सफलता के सोपान

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

आज से कई दिन पूर्व साधना क्रम को समझाते हुए मैंने तुम्हें बतलाया था कि मनुष्य को क्रियाशील रहना चाहिए। हमारा शास्त्रीय सिद्धान्त है–'**कुर्वन्नेवेह कर्माणि शतः समाः**'। अर्थात् मनुष्य को अपनी सौ वर्ष की आयु कर्म करते हुए व्यतीत करनी चाहिए। जो मनुष्य कर्मरत रहते हैं उनके रास्ते में कोई बाधायें नहीं आया करती। अपने रास्ते को वे ठीक प्रकार से निभा जाया करते हैं और साधना में सफलता पा जाया करते हैं। किन्तु जो मनुष्य कर्मरत नहीं हैं उनके रास्ते में विघ्न–बाधायें आती रहती हैं और वे अपने मार्ग में आगे बढ़ नहीं पाते। हमने यह देखा कि जिस समय हमने पहले–पहले सवाँई गाँव में जाकर निवास किया था या अन्यत्र जहाँ–जहाँ योग प्रचार कार्यक्रम बनाये वहाँ पर तीव्रतम साधनायें लोगों को कराई। नियम से उनका खानपान चलता था–नियम से वे साधना में बैठते थे उनका खानपान भी नियम से ही चलता था जैसे कि भगवान ने अपने मुखारविन्द से गीता में कहा–

'नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो चार्जुन।।
युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नाववोधस्य योगो भवति दुखहा।।'

अर्थात् जो लोग बहुत अधिक खा लेते हैं उनको योग सिद्ध नहीं होता, जो लोग भूखे मरते रहते हैं उनको भी योग सिद्ध नहीं होता। जो रात में बैठकर गप्पें लगाया करते हैं, ताश या जुआ खेलते रहते हैं। उनको भी योग सिद्ध नहीं होता। योग किनको सिद्ध होता है? जो ठीक समय पर सो जाते हैं, ठीक समय पर उठ जाते हैं, ठीक समय पर उचित मात्रा में भोजन करते हैं, ठीक समय पर अपने अभ्यास में बैठते हैं, जिनका काम नियमानुवर्तिता से चलता है वे अपनी स्थिति को उत्तम रूप से पा जाया करते हैं। इसलिए नियमों की शृंखला हर व्यक्ति को बना लेनी चाहिए। जो नियमों की शृंखला में बद्ध होकर चलते हैं वे योग मार्ग में ऊँचे उठ जाया करते हैं। हमने अपने अच्छे–अच्छे साधकों को नियमावली के अनुसार तप कराया उसके परिणामस्वरूप वे ऊँची स्थितियों को प्राप्त हुए। मैंने तुम्हारे सामने एक दिन जिक्र किया

था कि हमारा एक बच्चा रघुनन्दन प्रसाद जिसका नाम बाद में टाट बाबा प्रख्यात हुआ हमारे पास आया। वह पहले इंजीनियर था जब वह मेरे पास आया उस समय वह हेट, पेंट, नेकटाई पहने बिल्कुल बाबू वेश में था। उसके आने का एक कारण बना था। बनारस में भगवान विश्वनाथ के मन्दिर में प्रणाम करके दशाश्वमेध घाट पर उसने कई दिन अनशन व्रत करते हुये भगवान शिव का चिन्तन किया। उस समय उसको आकाशवाणी हुई, 'तुम सवाँई सिद्ध गुफा जाओ।' किन्तु उसे सिद्ध गुफा के बारे में कोई ज्ञान नहीं था। उसने निश्चय किया कि बनारस से जो गाड़ी पहले जायेगी उसमें बैठ जायेगा। उसने ऐसा ही किया। पहले चलने वाली गाड़ी दिल्ली आ रही थी वह उसमें बैठ गया। दिल्ली तक वह लोगों से सवाँई गाँव के बारे में पूछता रहा किन्तु किसी ने सवाँई गाँव के बारे में कुछ नहीं बताया। उसने अपने मन में निश्चय किया कि मुझे सवाँई गाँव का पता नहीं चला जिसकी मुझे आकाशवाणी हुई थी। अब मैं हरिद्वार जाकर गंगा जी में अपने इस शरीर को छोड़ दूँगा। जब यह इरादा करके हरिद्वार जाने के लिए गाड़ी की तलाश में था उस समय प्लेटफार्म पर बैठे हुए कुछ व्यक्ति आपस में बातें कर रहे थे कि भई! सवाँई गाँव में एक ऐसे महात्मा हैं जो सबकी नाक में रस्सी डालते हैं और दूध पिलाते हैं। इस तरह से वे हर बीमार आदमी का इलाज करते हैं और सभी राजी हो जाते हैं। यह सुनकर रघुनन्दन प्रसाद ने उन लोगों से पूछा—भई! यह सवाँई गाँव कहाँ है? उन लोगों ने कहा—भाई साहब! सवाँई गाँव तो जिला आगरा में है; और उसके पास में मितावली स्टेशन लगता है। वह पूछने लगा—तुम लोग कहाँ जाओगे? उन्होंने कहा—हम टूण्डला जायेंगे। तुम चलते हो तो चलो हम तुम्हें मितावली उतार देंगे। वहाँ से सवाँई एक मील की दूरी पर है। वह कहने लगा—बस! मैं यही चाहता हूँ। वह उन लोगों के साथ बैठ गया। उन लोगों ने उसे मितावली उतार दिया। मितावली उतर करके पूछते हुये वह गाँव में पहुँच गया। हमारे आश्रम के पास में ही जो तालाब है उसके पास ही हमारा एक बच्चा लक्ष्मीनारायण खड़ा था। रामचन्द्र उसके बड़े भाई का नाम था। अब वे दोनों नहीं रहे। लक्ष्मीनारायण तालाब में अपने बैलों को पानी पिला रहा था। रघुनन्दन प्रसाद ने लक्ष्मीनारायण से पूछा—यहाँ कोई सिद्धगुफा है? कोई बाग है? यहाँ महात्मा जी रहते हैं? लक्ष्मीनारायण ने कहा—हाँ यहाँ सिद्धगुफा है और यहाँ महात्मा जी भी रहते है, चलो! मैं आपको वहाँ ले चलता हूँ। इस प्रकार से उसे गुफा के पास ले आया और आश्रम दिखाया, गुफा दिखाई। गुफा को देखकर रघुनन्दन प्रसाद कहने लगा—हाँ, यही वह स्थान है जो मैंने स्वप्न में देखा था। भगवान शंकर ने मुझे यही स्थान दिखाया था। गुरुजी तो यहाँ है नहीं। लक्ष्मीनारायण ने कहा—गुरुजी तो एकान्तवास के लिये चण्डी के पहाड़ (हरिद्वार) पर गये हैं। पता नहीं, महीने में आयें, दो महीने में आयें कुछ कहा नहीं जा सकता। वह कहने लगा—अच्छा भाई! कभी भी आयें मुझे उनके दर्शन करने हैं। मैं दो महीने

के लिए वृन्दावन चला जाऊँ इतने में गुरुजी आ जायेंगे, मैं भी तब तक लौटकर आ जाऊँगा। इतनी बातें वे आपस में कर ही रहे थे कि अकस्मात् मैं वहाँ पहुँच गया। चण्डी के पहाड़ पर मैंने तीव्रतम साधना की व एकान्तवास किया। पिछली बार जब हम चण्डी के पहाड़ पर गये थे तब हमने अपना वह पत्थर ढूँढ़ा जिस पर मैं रात को सोया करता था। किन्तु वह पत्थर अब हमें नहीं मिला। लोगों ने उसे तोड़ दिया। वहाँ नीचे की तरफ लोगों ने मकान बना लिये हैं। खैर! चण्डी के पहाड़ से एकान्तवास करके जब मैं लौटा तो लक्ष्मीनारायण और रघुनन्दन प्रसाद दोनों गुफा में बैठे हुये थे। गुफा पर किवाड़ हमने लगवा लिए थे। वे दोनों किवाड़ बन्द करके अन्दर बैठे थे। उस समय और कोई कमरा नहीं बना था। मैंने अकस्मात् किवाड़ खोले तो वह ब्राह्मण बालक लक्ष्मीनारायण मुझसे पूछने लगा। (केवल यह देखने के लिये कि रघुनन्दन प्रसाद इन्हें पहचानेगा कि नहीं) 'भाई साहब! आप भी गुरुजी के दर्शन को आये हैं। रघुनन्दन कहने लगा यह भाई साहब नहीं, यही गुरुजी ही हैं। खैर! रघुनन्दन प्रसाद ने प्रणाम किया फिर मैंने भी कहा–

हाँ भई! मैं आया हूँ। मेरे मन में आने का विचार बना और मैं आ गया।

एक–दो दिन के बाद रघुनन्दन प्रसाद आगरे से दीक्षा का सामान लाया और मैंने उसे योग दीक्षा दी। दीक्षा देने के बाद हमने उसके लिये नियमावली बनाई पहले हम गुफा पर रख करके ही उसको नियमों पर चलाते रहे। मैं खाट पर सोया करता था वह खाट के बराबर में जमीन पर सोया करता था। पहले–पहले जब मैं गुफा पर आया तब मेरे पास भी खाट नहीं थी। मैं भी जमीन पर ही सोया करता था। फिर पं. चिरंजीलाल ने अपने लड़के की शादी के मौके पर हमें खाट बनवाकर दे दी थी। हमने रघुनन्दन प्रसाद की नियमावली बनाई। प्रातःकाल जल्दी उठ करके स्नानादि से निवृत्त होने पर हम उसे दो–तीन घण्टे ध्यान में बिठा देते थे। पहले मन्त्र जाप करता था फिर ध्यान में बैठता था। ध्यान के बाद फिर दो घण्टे मंत्र जाप किया करता था। नियम यह बनाया था कि वह दो–दो घण्टे मंत्र का जाप करके फिर ध्यान में बैठता रहे। शाम के पाँच बजे तक यह क्रम चलता था। फिर उसको अपने साथ भोजन कराता था। भोजन मैं स्वयं बनाता था। जमीन पर सोते हुये उसने एक दिन अपने पास में ही एक साँप को बैठा देख लिया। इससे वह बहुत डर गया। हमने उसको गुफा की छत पर सोने की आज्ञा दे दी। एक दिन उसने नीम के पेड़ पर भी एक साँप देख लिया। वह कहने लगा–गुरुजी! यह तो यहाँ पर भी आ गया। हमने फिर उसको रात में सोने के लिए गाँव में भेज दिया। एक हमारे बच्चे थे काशीराम पुजारी, उसके मन्दिर में हमने उसे छोड़ दिया। उसके मन्दिर के बगल में एक कमरा था उसमें बैठकर रघुनन्दन प्रसाद अपना अभ्यास करता रहा। तीन महीने तक एक समय भोजन करके वह अपना अभ्यास करता रहा। उसके बाद

तीन महीने केवल बेलपत्र खाकर अभ्यास करता रहा। उसके बाद तीन महीने केवल लस्सी पीकर अभ्यास किया। परिणाम निकला कि सिद्धिशक्तिमान हो गया। उसके अन्दर दूरदर्शन, दूरश्रवण की योग्यता आ गई वह हजारों कोस दूर–दूर की वस्तुएँ देखने वाला हो गया। हजारों कोस दूर की आवाज सुनने की योग्यता उसमें आ गई उसने जिसको जो वरदान दिया वह सफल हो गया। और भी कई प्रकार की ताकतें उसके अन्दर आ गईं। यही उसकी तपस्या एवं साधना की नियमानुवर्तिता के फलस्वरूप हुआ। मैंने तुम्हें यह बताया था कि जो ठीक समय पर खाता है ठीक समय पर सोता है, ठीक समय पर जागता है, ठीक समय पर अपने अभ्यास में बैठता है उसके लिये योग दुःख विनाशक हो जाता है। रघुनन्दन प्रसाद की नियमावली भी हमने इसी प्रकार की बनाई थी। जिसके फलस्वरूप उसके अन्दर सिद्धिशक्तियाँ आ गईं। यह एक स्वाभाविक चीज है। तुम इसको समझो या न समझो। योगदर्शन इस बात को बतलाता है–**कायेन्द्रिय सिद्धिरशुद्धि क्षयात्तपसः** अर्थात्–

तप के द्वारा योगी को कायिक और ऐन्द्रिय सिद्धि मिल जाती है। क्योंकि उसकी अशुद्धि का नाश हो जाता है। तप के द्वारा योगी दूर–दूर की देखने वाला, व दूर–दूर की सुनने वाला बन जाता है। यह बात रघुनन्दन प्रसाद के जीवन में आई। वह भी दूर–दूर की सुनने व देखने लगा। एक और बात उसके अन्दर आई वह थी ऋतम्भरा प्रज्ञा की। ऋतम्भरा प्रज्ञा का अर्थ है **'ऋतं सत्यं बिभर्ति या सा ऋतम्भरा'** जिस बुद्धि के अन्दर सत्य ज्ञान होता है। वह ऋतम्भरा प्रज्ञा कहलाती है। एक बार रघुनन्दन प्रसाद गुफा के पास बैठा था। सफीदों के हमारे बच्चे वैद्य रामस्वरूप शास्त्री मुझ से योग दीक्षा लेने वाले थे। रघुनन्दन प्रसाद ने कहा–शास्त्री जी! जल्दी दीक्षा ले लो। वह कहने लगा–क्यों महाराज! जल्दी क्यों लें? उसने कहा–'दीक्षा ले, लो। जल्दी का कारण फिर बताऊँगा'। दीक्षा लेने के बाद लोगों ने रघुनन्दन प्रसाद से जल्दी का कारण पूछा। उस समय गाँव के भी बीसियों व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे। रघुनन्दन प्रसाद ने सभी के सामने कहा–इस समय इनकी पत्नी को प्रसव हो रहा है, बच्चा पेट से बाहर आ गया है और वह लड़का है। कल तुम्हें तार मिल जायेगा। अब तुम सूतक में हो दीक्षा लेने के अधिकारी नहीं हो। लोग उसके पीछे पड़ गये कि बताओ आपको कैसे पता चला कि प्रसव होने वाला है। उन्होंने कहा–पहले तो मेरे मन के अन्दर आया कि प्रसव होने वाला है। फिर मैंने आँख उठाकर देखा तो मैंने इनकी स्त्री को प्रसव पीड़ा से कराहते हुए देख लिया फिर मैंने देखा कि बच्चा हो गया है। उस लड़के का नाम आनन्दस्वरूप है। उसके मन में आया कि बच्चा होने वाला है इसको कहते हैं ऋतम्भरा प्रज्ञा। सम्प्रज्ञात समाधि की चौथी श्रेणी अस्मितानुगत समाधि में ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय हुआ करता है। इस स्थिति में रघुनन्दन प्रसाद ने जिसको जैसा कह दिया हो गया किन्तु जब ज्यादा ही प्रपंच में पड़ गया तो एक दिन मैंने कहा–देखो!

तुम यह सब मत किया करो। सिद्धिशक्तिमान को अपनी सिद्धियाँ दिखलानी नहीं चाहिए। उसने कहा–'आप मेरा मान नहीं देख सकते इसलिए आप नाराज होते हैं। मैंने कहा मेरे बच्चे का मान तो मेरा ही मान है। किन्तु ये साधना में विघ्न है। खैर! उसके मन में ये भावनायें आने लगीं कि वह वहाँ से चला जाये। उन्हीं दिनों गुफा पर एक साधु आया। मैं उस समय काशीराम पुजारी के यहाँ भोजन करने गया हुआ था। उस महात्मा ने रघुनन्दन प्रसाद से कहा–महाराज जी कहाँ गये हैं? उसने कहा–महाराज जी भोजन करने गये हुए हैं। महात्मा ने पूछा–कब तक आयेंगे? उसने कहा–बस! भोजन करके अभी आते ही होंगे। साधु ने कहा–नहीं, उनका विचार बदल गया है। वे किसी के यहाँ सत्संग करके पाँच बजे तक आने का विचार बना रहे हैं। तुम उन्हें एक बार बुला लाओ। वह मुझे बुलाने गया। मैं काशीराम पुजारी के मन्दिर में बैठा हुआ था। रघुनन्दन प्रसाद ने आकर मुझसे कहा–एक महात्मा आपके दर्शनार्थ गुफा पर आये हुए हैं। उन्होंने ही मुझ से कहा है कि आप शाम के पाँच बजे तक आयेंगे। इसलिए उन्हें बुला लाओ। मैंने कहा–हाँ भई! आज तो हमारा विचार सत्संग करके ही आने का था किन्तु महात्मा जी दर्शनार्थ आये हैं तो मैं गुफा पर चलता हूँ। मैं रास्ते में अपने मन में सोच रहा था कि महात्मा को सम्मान के साथ अपने साथ बिठाऊँगा। मेरे वहाँ पहुँचने पर उसने रास्ते में ही लम्बा पड़कर दण्डवत् प्रणाम किया। उसके बाद गुफा के सामने खड़े होकर रघुनन्दन प्रसाद से कहा–'क्यों तू यहाँ विश्वनाथ जी की आज्ञा से आया है? उसने कहा–मैं विश्वनाथ जी की आज्ञा से ही आया हूँ।' महात्मा ने मेरी ओर इशारा करके कहा–यही विश्वनाथ जी हैं। इनकी आज्ञा का पालन करना। कर दण्डवत् प्रणाम! जो तुम्हें यहाँ मिल गया है वह कहीं नहीं मिलेगा। इसके बाद गुफा की सात बार परिक्रमा करवाई महात्मा जी ने फिर कहा–इस जगह को नहीं छोड़ना। किन्तु तू क्रोधी है अहंकारी है तू चला जरूर जायेगा यहाँ से। और तुझे घोर विपत्तियाँ घेर लेंगी। उस समय गुफा पर दौलतराम आदि 10–15 व्यक्ति मौजूद थे। उन्होंने कहा–'महाराज! आप कुछ भोजन कर लें। महात्मा जी ने कहा–मेरा भोजन तो यहाँ बहुत खड़ा है। आक–धतूरे के काफी पत्ते तोड़कर सभी के सामने खा गया। लोग कहने लगे–महाराज! आप थोड़ा दूध ले लें। वह कहने लगा–यही मेरा दूध है। आँवले की जड़ में वर्षा का पानी एकत्रित था वही लेकर पी लिया। उसके बाद वह महात्मा चला गया। गाँव के कई लोग उसके पीछे गये किन्तु तालाब तक दिखाई देने के बाद फिर उसका कहीं पता नहीं चला किधर निकल गये।

कुछ दिनों के बाद रघुनन्दन प्रसाद हमारे पास से चला गया। ऋषिकेश से ऊपर किसी पहाड़ की गुफा में बैठ गया। वह पहाड़ ऊपर से टूट गया और उसमें दब गया। पहाड़ के लोगों ने उसे देख लिया था। उन्होंने खोद–खोद कर दो–तीन दिन में उसे निकाला। थोड़ी–थोड़ी साँस आ रही थी। खैर! जिन्दगी तो बच गई उसके बाद लौट करके मेरे पास आया। मैं उसे

पहचान भी नहीं पाया। मैंने पूछा—तुम कौन हो कहाँ से आये हो? वह कहने लगा—गुरुदेव मैं आपका बच्चा रघुनन्दन प्रसाद हूँ। आप मुझे पहचान नहीं रहे हैं? मैंने कहा—रघुनन्दन प्रसाद तुम्हारी यह क्या हालत हो गई है?'' वह कहने लगा—गुरुजी! मैं तो पहाड़ के नीचे दब गया था बड़ी मुश्किल से बचा हूँ। इसके बाद वह मुझसे दूर—दूर रहने लगा और फिर फिरोजाबाद में अपना आश्रम कायम कर लिया। अभी पिछले वर्ष 13 मई को, उसने शरीर छोड़ दिया है। मेरे कहने का अभिप्राय एक है कि उसने हमारे बताये नियम के अनुसार नियमानुवर्तिता से साधनायें की और साधना के फलस्वरूप इतनी ऊँची स्थिति को प्राप्त किया। योगदर्शन हमें बतलाता है—**तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः** मनुष्य पहले तप करे। उस तप के अन्दर ब्रह्मचर्य से रहे। आहार—विहार पर संयम रखे। नैत्यिक व्यायाम करे। तप से दूर दर्शन, दूर श्रवण आदि योग्यता स्वतः आती है। इसलिए साधक ब्रह्मचर्य का पालन करे। आहार—विहार को युक्त रखें और तीसरी बात ज्यादा बक—बक, झक—झक न करे। चौथी बात—अपनी नियमानुवर्तिता का पक्का रहे उसमें विघ्न—बाधा न आने दें। तप के साथ—साथ मन्त्र जाप जुड़ा हुआ है। मन्त्र जाप से इष्टदेव के दर्शन होते हैं। ऋषि, मुनि और देवता स्वाध्यायशील व्यक्ति को दर्शन देकर वरदान आदि दे दिया करते हैं। जो मनुष्य तपपूर्वक स्वाध्याय करेगा तो इसका परिणाम यह निकलेगा कि रजोगुण और तमोगुण खत्म हो जायेंगे।

सतोगुण का विकास हो जायेगा और उसके बाद स्वतः ही ईश्वर प्रणिधान हो जायेगा। ईश्वर को आत्मसमर्पण की भावना तप और स्वाध्याय से ही आती है। ईश्वर महायोगी है। उनके संकल्प से, शक्तिपात से योगी को समाधि हो जाती है। इसी के उदाहरण हैं तुलसीदास, बृजगोपिकायें तथा नरसी मेहता आदि—आदि। तो इसलिये नियमानुवर्तिता से ही ये सब कुछ होगा। हमारे पास बहुत बच्चे आते हैं। उनकी भावना रहती है कि हम कुछ करें किन्तु पड़े रहने से साधना नहीं बनती। साधना बनेगी सद्गुरुदेव के कन्ट्रोल में हाथ में बँधकर करने से। नियमावली बनायेंगे गुरुदेव, तुम उस नियमावली का पालन करो। तीसरी बात, भोग विलास छोड़ना पड़ेगा। जो लोग ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके नियमावली का पालन करेंगे। उनके अन्दर अवश्य ही शक्ति पैदा हो जायेगी, वे अवश्य ही बन जायेंगे। ऐसी नहीं कि कोई न बनें। किन्तु बनने वाला तो कोई हो अधिकारी तो हो। यदि एक व्यक्ति आकर तरह—तरह से प्रश्न करता है—खेचरी कैसे करनी चाहिये? बजोली कैसे करनी चाहिये? आजकल लोगों ने बजोली को भोग विलास का साधन मान लिया है। अपनी मूत्रेन्द्रिय में सलाई आदि घुमा लेते हैं। इससे भोग विलास की सामर्थ्य बढ़ जाती है और वे भोगी बन जाते हैं। यह नहीं होता कि वे पारे और वीर्य की गोली बनाकर यहाँ (भृकुटी में) पहुँचायें और समाधि लग जाये। ऐसा कोई कर ही नहीं पाता। इतना प्राणायाम नहीं होता इतनी योग्यता नहीं होती। इसलिये अपनी नियमावली पर जो

चलता है चाहे वह हठयोग की साधना करता हो या राजयोग की साधना, नियमानुवर्तिता दोनों के लिए आवश्यक है। हमें इस कलिकाल में तो हठयोग या प्राणायाम करने वाला कोई दीखता ही नहीं। हमारे पास प्राणायाम करने वाले बहुत से लोग आये हमने उनको प्राणायाम का उपदेश दिया किन्तु वे आगे बढ़ नहीं पाये। हमने अपने कई ब्रह्मचारियों को प्राणायाम कराना चाहा। खूब घी भी खिलाया किन्तु वे सफल नहीं हुए। प्राण पर नियन्त्रण कर नहीं पाये। केवल मात्र एक लड़का जम्मू का संसार सिंह निकला जिसने प्राणायाम किया और सफलता पाई। उसको भी प्राणायाम से दूर–दर्शन, दूर–श्रवण की योग्यता आ गई थी इसलिए देखो। अब हम दो–तीन दिन और यहाँ रहेंगे। फिर अपने अगले कार्यक्रमों में जायेंगे। मैं तुम्हें योग सिद्धान्त तो अपनी ओर से समझाने की कोशिश कर देता हूँ परन्तु तुम लोग कितना चल पाते हो यह बात अलग है। मैंने अपने हर गृहस्थी बच्चे को यह बतलाया हुआ है कि सुबह पौने चार बजे उठो। थोड़ा सा जल पीयो। फिर शौचादि जाकर नहाओ। शरीर को खुरदरे अंगोछे से रगड़–रगड़ कर साफ करो ताकि रोमकूप खुल जायें। फिर श्री प्रभुजी की आरती करो। इसके बाद एक घण्टे जीवन तत्व साधन करो। इतना करने के बाद दो घण्टे गुरुमन्त्र का जाप करो और ज्यादा नहीं तो कम से कम आधा घण्टा ध्यान का अभ्यास करो। यह प्रातःकाल की नियमावली है। दिन में अपने–अपने काम करो। सायंकाल के समय फिर समय निकालकर दो घण्टे मन्त्र जाप अवश्य करो। रात्रि भोजन करने के बाद श्वासन से मंत्रजाप करते हुए नौ या साढ़े नौ बजे तक सो जाया करो। इस प्रकार से तुम्हारा ध्यान लग जायेगा। देखो! तुम सबने गर्भावस्था में प्रतिज्ञायें की हैं। मनुष्य गर्भावस्था में प्रतिज्ञा करता है यदि अब की बार मैं इस नरक से छूट जाऊँगा तो मैं नारायण की शरण लूँगा, भगवान महेश्वर की शरण लूँगा। योग साधना करूँगा। किन्तु संसार में आते ही मनुष्य इन प्रतिज्ञाओं को भूल जाता है। मैंने कल तुम्हें भर्तृहरि का एक श्लोक सुनाया था। जिसका भावार्थ था कि रोज सूर्य निकलता है और शाम को अस्त हो जाता है मनुष्य की आयु का एक दिन कम हो जाता है। संसार में अपने नाना प्रकार के धंधों में व्यस्त रहने के कारण हमें समय का भी ज्ञान नहीं हो पाता। हम रोज सुनते हैं अमुक मर गया है अमुक पैदा हो गया है किन्तु हमारे मन में कोई भय उत्पन्न नहीं होता। यह ख्याल ही नहीं आता कि हम आज बोल रहे हैं किन्तु कल को ऐसा समय आ जायेगा कि जिसमें बोलना बंद हो जायेगा। हम कुछ भी कह नहीं सकेंगे। यह सारा संसार मोहरूपी शराब को पीकर उन्मत्त होता चला जा रहा है। मुझे एक छोटी सी घटना आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के चरित्रों के अन्दर याद आई। श्री प्रभुजी ऋषिकेश आश्रम में विराजमान थे। मैं भी वहीं पर था और भी कई गुरु भाई थे। अमृतसर की एक देवी अपने बच्चे को लेकर के आई जो बहुत ही शराबी कबाबी व व्यभिचारी था। उसने अपने घर की सारी सम्पत्ति नष्ट कर दी थी। पहले

उसकी हालत को देखकर के श्री प्रभुजी ने उसे रखने से मना कर दिया किन्तु उसकी माता के बहुत अनुनय–विनय करने पर रख लिया। श्री प्रभुजी दीनदयाल हैं। भक्तवत्सल हैं उन्होंने उस साईदास नामक लड़के को आश्रम में रख लिया। शक्तिपात उस पर इतना गहरा हुआ कि वह आठ–आठ घण्टे ध्यान में बैठा रहता था। हमारी उम्र छोटी थी हम खेलते–कूदते रहते थे। यह मुझे और नरसिंह मूर्ति जी को ताड़ना दिया करता था। एक दिन वह बड़े कड़े शब्दों में ताड़ रहा था–तुम्हें शर्म नहीं आती। तुम अपना जीवन व्यर्थ में गवा रहे हो तुम ध्यान में नहीं बैठते हो'। उसके इन शब्दों को सुन करके श्रीप्रभुजी ने साई दास से कहा–'साई दास! तू इनको क्या कह रहा है, तू अपने को सम्हाल! तू अपने आपको सम्हाल ले तो यह बहुत बड़ी बात है ये लोग तो तेरे जैसे हजारों को बनाने वाले होंगे भविष्य में। तू इनकी क्या चिन्ता कर रहा है तू अपनी चिन्ता कर'। साईदास प्रभुजी के कहने से चुप तो हो गया किन्तु उसके मन के अन्दर यह भावना बनी रही कि देखो! मैं इतना बड़ा ध्यानी हूँ, मैं आठ–आठ, दस–दस घण्टे ध्यान में बैठा रहता हूँ, मेरा भी ध्यान ऊँचा चलता है किन्तु प्रभुजी ने यह क्या शब्द कह दिया है–तुम अपने आप को सम्हालो। ये लोग खेलते कूदते रहते सम्हाल हैं ध्यान में भी विशेष नहीं बैठते किन्तु प्रभुजी इन्हें कुछ नहीं कहते। मेरी उम्र उस समय 15 या 16 साल की होगी। नरसिंह मूर्ति जी मुझसे एक–दो वर्ष छोटे थे। थोड़े दिन के बाद श्री प्रभुजी कनखल चले गये। साईदास भी प्रभुजी के साथ गया। हम लोग भी प्रभुजी की सेवा में कनखल चले गये। थोड़े दिन के बाद साईदास को अमृतसर से किसी शादी का निमन्त्रण आया। उस समय साईदास की माँ भी साथ में थी। निमन्त्रण में लिखा था–तुम पत्र देखते ही फौरन चले आओ। साईदास जाने को तैयार हो गया। श्री प्रभुजी कहने लगे–'साईदास! तुम अभी मत जाओ इस शादी को तुम छोड़ दो किन्तु वह नहीं माना उसकी माँ कहने लगी–महाराज जी! शादी में चला गया तो अब यह गिर जायेगा। इस पर साईदास कहने लगा–प्रभुजी! अब मुझे संसार में कोई गिराने वाला है ही नहीं। मैं अब कैसे गिर जाऊँगा। श्री प्रभुजी ने मेरे सामने ये शब्द कहे–साईदास! तुम्हें इस बात का ज्ञान नहीं कि तुम्हें इतनी बड़ी शक्ति, इतना बड़ा ध्यान कैसे मिल गया है। ये संस्कारवश हो गया है इसलिये तीन दिन तक हमारे पास से कहीं मत जा। तीन दिन के बाद चले जाना फिर तुम्हें कोई नहीं गिरा सकेगा। तीन दिन के अन्दर यदि चला गया तो तू अवश्य गिर जायेगा। फिर तेरी सम्हाल मुश्किल होगी। साईदास हँसने लगा–प्रभुजी आप कह रहे हैं ऐसा किन्तु अब मुझे गिराने वाला कोई नहीं है–वह हठात् चला गया। जब वह चला गया तो प्रभुजी ने अपने मुख से ये शब्द कहे '**दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।**'

अर्थात् त्रिगुणात्मिका मेरा माया अत्यन्त दुस्तर है जो मेरे शरण में आ जाते हैं वही इस माया से पार हो पाते हैं। दूसरा नहीं। श्री प्रभुजी ने कहा—देखो। अब यह चला गया है अब इसका लौटकर आना मुश्किल है। यदि तीन दिन हमारे पास रह जाता तो यह खतरे से निकल जाता फिर यह नहीं गिरता। बात वही बनी। साईदास लौटकर नहीं आया। एक महीने के बाद श्रीप्रभुजी योग प्रचार कार्यक्रम के लिए अमृतसर पधारे। मैं और नरसिंह मूर्ति भी साथ थे। हम दोनों साईदास के मकान पर उसको देखने गये। वह अपने छत पर खाट पर पड़ा हुआ था। शराब की बोतलें उसके खाट के आसपास पड़ी थीं। मैंने उससे कहा—भाई साईदास! क्या हालचाल हैं? पंजाबी भाषा में उसने कहा—हालचाल चंगा है होर की होंदा'। मैंने पूछा—आपका ध्यान लगता है? वह कहने लगा—ध्यान दी की गल्ल है जेड़ी तस्वीर सोचदी आ जादी है'। यह हालत थी उसकी। उसे शराब का दुर्व्यसन बुरी तरह से लग गया और उसका पतन हो गया और ध्यान का नाम भी उसके जीवन में नहीं रहा। थोड़े दिन के बाद उसका जीवन समाप्त हो गया। खैर! कहने का अभिप्राय मेरा यह है कि प्रभुजी की कृपायें बहुत विलक्षण थीं। बड़ी दूरदर्शिता से बात कहा करते थे। एक बार मैं होली के आस–पास बरसाने में था। बरसाने में फाल्गुन शुदी नवमी या दशमी को होली मनाई जाती है। खूब रंग में खेलते हैं। नन्दगाँव की होली बाद में होती है। उस समय श्री प्रभुजी का पत्र मुझे आया—लिखा था चि. हमारे पत्र के पाते ही तुम फौरन ऋषिकेश चले आओ। तुम बरसाना नहीं रहना। मैं **'गुरोराज्ञानुलंघनीया'** के सिद्धान्त के अनुसार दूसरे दिन ऋषिकेश पहुँच गया। श्री प्रभुजी ने मुझे देखकर कहा—बेटा यह तुमने बहुत अच्छा किया मैंने कहा—प्रभुजी! बरसाने की होली देखने तो विदेश से भी लोग आते हैं एक दिन का फर्क था आपने मुझे वहाँ रहने नहीं दिया। वे कहने लगे—बेटा! जिन्दगी पड़ी है होली देखने के लिये। इस समय तुम्हारा आना ही जरूरी था। खैर! इसके बाद फिर प्रकरण चला—प्रभुजी ने कहा—हाँ, अगले साल तू होली देख लेना कोई बात नहीं। श्रीप्रभुजी के ये शब्द थे—यदि इस साल तू बरसाने रह जाता तो हमारे काम का नहीं रहता'। बात मैं समझ गया। वहाँ पर क्या प्रभाव पड़ सकता था? मैंने आज्ञा का पालन कर लिया फलस्वरूप उनकी कृपा बनी रही। जब तक मनुष्य अन्तार्जगत में प्रवेश नहीं करता तब तक बाह्यवृत्तियाँ विचलित करती रहती हैं। इसलिये तुम लोग अपने आप को ध्यान की ओर लगाओ यही मनुष्य के कल्याण का मूल साधन है। सभी को बार–बार आशीर्वाद।

मेरा बच्चा,

योगी रघुनन्दन प्रसाद

(रमण बाबा उर्फ टट बाबा)

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज

वैराग्य शतक में योगी भर्तृहरि महाराज ने एक श्लोक लिखा है जो मुझे बार–बार याद आता रहा है। श्लोक इस प्रकार है–

आदित्यस्य गतागतैरहरहः
संक्षीयते जीवतं।
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः
कालो न विज्ञायते।
दृष्टवा जन्मजराविपत्ति मरणं
त्रासश्च नोत्पद्यते।
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरा–
मुन्मत्तभूतं जगत्।।

अर्थात् सूर्य के निकलने छुप–जाने से मनुष्य की आयु का एक दिन क्षीण हो जाता है किन्तु मनुष्य अपने व्यापार और काम–धन्धों में इतना व्यस्त रहता है कि उसे समय का ज्ञान ही नहीं रहता। हमारी आँखों के सामने नित नए–नए दृश्य आते रहते हैं, कान रोज–रोज सुनते हैं कि फलां जगह बच्चे का जन्म हो गया और फलां जगह मृत्यु हो गई। यह सब समाचार सुनते हुए भी मनुष्य के मन में यह भय पैदा नहीं होता कि काल–कराल की चोट हम पर भी पड़ने वाली है। मोहमयी प्रमाद–मदिरा को पीकर यह संसार उन्मत्त–सा हो रहा है, ऐसा लगता है।

मेरा बच्चा रघुनन्दनप्रसाद सन् 43–44 में मेरे पास आया था। उसने बनारस में रहकर के स्वाध्याय सहित घोरतम् तप किया जिसके फलस्वरूप उसने भगवान विश्वनाथ की आकाशवाणी सुनी, 'तुम सवाई जाओ वहाँ तुम्हारा कल्याण होगा। इस आकाशवाणी के साथ ही सवाई आश्रम का पूरा दृश्य एवं मेरी आकृति भी उसे दिखलाई दी। इतना दिखाई देने के

बाद यह सब दृश्य छुप गया। पर, रघुनन्दनप्रसाद यह नहीं जान सके कि सवाई आश्रम कहाँ है और मैं वहाँ कैसे जाऊँगा। आकाशवाणी ने यह स्पष्टता से बता दिया कि 'स्वप्न में जो देखा है। वह तुम्हारा गुरुस्थान है और जो महात्मा देखा वह तुम्हारे गुरुदेव हैं तुम सवाई जाओ।'

किन्तु सवाई ग्राम व आश्रम का कुछ भी पता न होने के कारण मेरे बच्चे रघुनन्दन प्रसाद ने विचार किया कि जो भी रेलगाड़ी बनारस से पहले चलेगी उसी में मैं सवार हो जाऊँगा और चलते-चलते मार्ग में सवाई आश्रम की चर्चा करता रहूँगा। कहीं न कहीं कोई मुसाफिर मुझे सवाई का ठीक पता बता ही देगा। इस प्रकार मैं वहाँ पहुँच जाऊँगा, और श्रीगुरुदेव के दर्शन प्राप्त कर अपने जीवन को सफल बना लूँगा। इस विचार में मग्न यह आने वाली गाड़ी में सवार होकर देहली जा पहुँचे। उसके मन में यह विचार भी था कि यदि मुझे सवाई आश्रम का पता न चला तो मैं हरिद्वार पहुँचकर अपने शरीर को गंगामाता को अर्पण कर दूँगा। मेरे बच्चे रघुनन्दन प्रसाद के मन में यह विचार बहुत ही प्रबल हो चुका था और वह देहली जंक्शन के प्लेटफार्म पर घूम रहे थे। इतनी देर में दो मुसाफिरों की बातें उनके कानों में पड़ीं। एक मुसाफिर दूसरे मुसाफिर से कह रहा था कि भाई तुम्हें सवाई जाना है तो मेरे साथ गाड़ी में बैठ जाओ। मैं तो टूण्डला जाऊँगा। टूण्डला से पहला स्टेशन मितावली है वहाँ तुम उतर कर सवाई चले जाना। रघुनन्दन प्रसाद ने यह वार्ता सुन ली और वह उनसे बोले भाई मैं भी सवाई जाऊँगा, तुम्हारे साथ ही क्यूँ न चलूँ? यह कहकर वह उन लोगों के साथ ही गाड़ी में सवार हो गए। जिस गाड़ी में सवार हुए उसका नाम आगरा-देहली पैसेन्जर था। उसमें बैठकर मित्तावली स्टेशन पहुँचे और यहाँ उतर कर कृषकों से पूछते-पूछते सवाई गाँव आ पहुँचे। सवाई ग्राम में आश्रम का एक तालाब है। उस तालाब पर सवाई निवासी पण्डित रामचन्द्र शर्मा के छोटे भाई लक्ष्मीनारायण पहलवान अपने बैलों को जल पिला रहे थे। रघुनन्दन प्रसाद की प्रथम भेंट लक्ष्मीनारायण से हुई। लक्ष्मीनारायण अपने बैलों को घर भेजकर रघुनन्दन प्रसाद को गुफा पर लिवा लाए और श्री प्रभुजी की आरती पूजन के बाद वहीं बैठे रहे। उन दिनों का यही नियम था कि जब मैं कहीं बाहर जाता था तो श्री प्रभुजी का आरती पूजन गाँव के लोग ही किया करते थे। आरती-पूजन के बाद लक्ष्मीनारायण पहलवान रात के लगभग 8-8, 10-10, बजे तक कुटिया में ही बैठे रहते और बातें करते रहते थे। लक्ष्मीनारायण ने यह भी बता दिया कि गुरुदेवजी बाहर एकान्तवास हेतु गए हुए हैं। रघुनन्दन प्रसाद कह रहे थे कि भाई मेरा गुरुस्थान तो यही है बनारस में इसी स्थान का दृश्य मुझे पूर्णरूपेण स्वप्न में दिखाई दिया था। एवम् श्री गुरुदेवजी का दर्शन भी हुआ था, किन्तु श्री गुरुदेवजी तो यहाँ हैं ही नहीं! वे एकान्तवास को गए हुए हैं जब तक वे एकान्तवास से लौटकर आएँ तब तक मैं भी मथुरा

वृन्दावन घूम आऊँ। वे यह बातें कर ही रहे थे कि रात के लगभग 8:30 बजे उसी दिन मैं भी आश्रम पहुँच गया। मैंने कुटिया के किवाड़ खोले तो चि० लक्ष्मीनारायण और रघुनन्दन प्रसाद दोनों को वहाँ बैठे पाया।

लक्ष्मीनारायण ने यह जानने के लिए कि रघुनन्दनप्रसाद गुरुदेव को पहचानते हैं या नहीं, मुझसे कहा भाई साहब! आप कहाँ से आए हैं क्या आप भी गुरुजी के दर्शनों को आये हैं? यह एक और भाई साहब भी जो मेरे पास काफी देर से बैठे हैं यह भी गुरुजी के दर्शनों के लिए आए हैं। लक्ष्मीनारायण यह कहकर हँसने से लगे तभी रघुनन्दनप्रसाद ने मुझे पहचान लिया और कहा—भाई लक्ष्मीनारायण तुम कुछ भी मजाक करते रहो किन्तु यही मेरे गुरुदेव हैं। इन्हीं को मैंने बनारस में स्वप्न में देखा था और यही तुम्हारे गुरुदेव है इतना आकाशवाणी ने भी बताया था। ऐसा कहकर गद्‌गद् कण्ठ होकर मेरे पैरों से लिपटकर मेरे बच्चे रघुनन्दनप्रसाद ने मुझे प्रणाम किया। मैंने भी उसे कण्ठ से लगा लिया और कह दिया कि जिसकी तलाश में तुम आए हो वह मैं ही हूँ। मैं इस समय भगवती जगदम्बा चण्डी के पहाड़ी पर तीन मास के एकान्तवास के बाद हरिद्वार से आया हूँ।

यह सब बातें हो जाने के बाद रघुनन्दन प्रसाद ने आगरा से थाली, लोटा, गिलास व अन्य दीक्षा सम्बन्धी सामान लेकर मुझ से योग दीक्षा ली और उसे मैंने अजपा जाप का मंत्रोपदेश करके षटचक्रभेदन के लिए मूलाधार कमल के ध्यान का आदेश दिया। पहले हमारा नियम था कि जिसको भी योग मार्ग का उपदेश दिया करते थे उसे नियमावली भी समझा दिया करते थे। मैंने अपने बच्चे रघुनन्दन प्रसाद की कठिन साधना के नियम बनाए। उन नियमों के अनुसार प्रातः 5 से 8 बजे तक मन्त्र जाप व ध्यान, पुनः 9 से 12 बजे तक इसी प्रकार का ध्यान फिर 1 से 4 बजे तक तीन घण्टे का ध्यान उसके बाद 5 से 8 बजे तक फिर तीन घण्टे के ध्यान का कार्यक्रम चलता रहा। इसी प्रकार आहार के सम्बन्ध में भी तीव्रतम साधना उनकी चलती रही।

उस समय सवाई आश्रम नितान्त जंगल था। होनहार की प्रबलता रघुनन्दनप्रसाद मेरे पास चबूतरे पर बाहर नग्न देह में ही रहा करते थे। एक दिन उनके पेट पर सर्प आ बैठा, वे इससे काफी भयभीत हो गये। उन्हें भयभीत देखकर मैंने कुटिया पर सोने की आज्ञा दे दी। उन्होंने कुटिया के ऊपर भी नीम के पेड़ पर चढ़े हुए एक सर्प को देखा। एक दिन गुफा में भी सर्प को देखा। नीचे कुटिया के दायीं ओर एक बड़ा झाड़ था वहाँ एकांत जानकर रघुनन्दनप्रसाद ध्यान में बैठे थे वहाँ भी एक दिन उनके पास सर्प आ बैठा। उनको दीखने वाले सर्पों ने कोई प्रहार कभी उन पर नहीं किया, किन्तु रघुनन्दन प्रसाद काफी भयभीत हो गये थे। अतः मैंने उन्हें गाँव के काशीराम पुजारी के मन्दिर में साधना करने की स्वीकृति दे दी। मन्दिर में रहकर

उन्होंने पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए तीव्रतम साधना की। तीन महीने एक समय भोजन करके, तीन महीने दूध पीकर, तीन महीने केवल जल व बेलपत्र खाकर साधना करते रहे। इसके बाद मात्र फल खाकर तपस्या करते रहे। इस प्रकार घोरतम तप करने और तीव्रतम शक्तिपात के फलस्वरूप वह सम्प्रज्ञात योग की पराकाष्ठा को पहुँच गये। वितर्कानुगत, विचारानुगत और आनंदानुगत संप्रज्ञात योग की तीन श्रेणियों को पार करके तप के द्वारा दूर-दर्शन की सिद्धि भी उन्हें प्राप्त हो गई। मेरे इस बच्चे ने स्वयं मुझे बताया कि गुरुजी मेरे मन में एक विशेष ताकत आ गई है, मैं भी उसे जानता नहीं हूँ, जहाँ जो कुछ हो रहा होता है उसका आभास मेरे मन में पहले ही से हो जाता है और वह सत्य ही होता है और यदि मैं आँख उठाकर देखता हूँ तो वह प्रत्यक्ष हो जाता है। योग-दर्शन में इसे ऋतम्भरा प्रज्ञा कहा गया है।

ऋतं सत्यंविभर्ति य सा ऋतम्भरा

मैंने उनसे पूछा था, रघुनन्दन प्रसाद बताओ इस समय हरिद्वार मे क्या हो रहा है? उसने कहा, वर्षा हो रही है। मैंने तत्काल पता लगाया तो बात बिल्कुल यथार्थ गई। इस प्रकार रघुनन्दन प्रसाद संप्रज्ञात योग की पराकाष्ठा को पहुँच गये थे। अपने आपको व्यापक तेज स्वरूप में लीन होते देखते थे। मन में ध्वनि एक ही रहती थी 'अस्मि-अस्मि अहमेवास्मि-इदं सर्व अस्मि' इस प्रकार का ज्ञान रघुनन्दन प्रसाद को होता रहा। भगवान श्रीकृष्ण ने इस समाधि का वर्णन करते हुए गीता में कहा है-

सर्व भूतास्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सार्वत्र समदर्शन।।

अर्थात् जो प्राणिमात्र को अपने में और अपने को प्राणिमात्र में योगयुक्त होकर देखता है वह समाहित अन्त:करणयुक्त समदृष्टि वाला योगी होता है।

किन्तु इतनी ऊँची स्थिति आ जाने के बाद रघुनन्दन प्रसाद लोगों को भूत-भविष्य की बातें भी बताने लगे-तू पास होगा, तू फेल होगा, वह तुम्हें मिलेगा या वह नहीं मिलेगा? मिलेगा आदि-आदि।

यह उनके रास्ते में एक बड़ा अन्तराय था। उन्हें बार-बार मैंने समझाया कि सांसारिक लोगों के मान-सम्मान के झमेले में पड़कर तुम्हें यह नहीं करना चाहिए। इससे तुम्हारी आन्तरिक शक्ति का ह्रास हो जायेगा। पर इस दिशा-बोध का अर्थ उन्होंने यह लगाया कि महाराज जी! मेरा मान-सम्मान देख ही नहीं सकते। मैंने उन्हें बताया कि तुम्हारा मान-सम्मान मेरा अपना ही मान-सम्मान है, किन्तु समाधि मार्ग में तुम ये जो कुछ करते हो वह बड़ा अन्तराय है, पर बच्चे रघुनन्दन प्रसाद को मेरी यह बातें अच्छी नहीं लगी और वह कहीं अन्यत्र जाने का विचार मन ही मन करने लगे। इसी बीच में एक विचित्र घटना और घटी वह

यह कि–

उस समय इस प्रभु जी वाली कुटिया के अतिरिक्त एक पर्णशाला हमने और बनवा ली थी, जिसके आसपास मेंहदी की पौध रघुनन्दन प्रसाद ने लगा ली थी और उसकी सिंचाई भी वह स्वयं तालाब से जल लाकर किया करते थे। उन दिनों मैं काशीराम पुजारी के यहाँ भोजन करने जाया करता था और एक–डेढ़ घण्टे मे लौट आया करता था, रघुनन्दन प्रसाद पर्णशाला में बैठे रहा करते थे। एक दिन दोपहर के लगभग 1 बजे कहीं से एक महात्मा आये। वे मृगछाला बांधे हुए एवं लंगोट लगाये हुए थे, बाकी सब शरीर नंगा था, रघुनन्दन प्रसाद पर्णशाला में अन्दर थे उन्हें उस महात्मा ने आवाज देकर बाहर बुलाया और कहा कहो महाराज जी कहाँ गये हैं? कितनी देर में आयेंगे? रघुनन्दन प्रसाद ने कहा कि महाराज जी इस समय गाँव मे भोजन करने जाया करते हैं और भोजन करके तत्काल लौट आते हैं, वह आ ही रहे होंगे। महात्मा ने उत्तर दिया, नहीं महाराज जी अभी नहीं आ रहे, उन्होंने 5 बजे आने का निश्चय कर लिया है, अत: तुम स्वयं जाकर बुला लाओ और यह कहना कि एक महात्मा दर्शनार्थ आये हैं। रघुनन्दन प्रसाद काशीराम पुजारी के मन्दिर में मुझे बुलाने गया और उन महात्मा का सन्देश मुझे सुनाया। मैंने कहा मेरा इरादा तो शाम को 5 बजे आने का था, किन्तु तुम महात्मा का सन्देश लेकर आये हो इसलिए मैं इसी समय चलता हूँ। मैं अपने मन में यह विचार करता हुआ आ रहा था कि किस प्रकार भूत–भविष्य के ज्ञाता महात्मा को अपने साथ खाट पर बिठाऊँगा और किस भाँति उनका आदर–सत्कार करूँगा। किन्तु मैंने आश्चर्य से देखा कि वे महात्मा, मेरे आश्रम पर पहुँचने पर स्वयं मेरी ओर दौड़कर आये और रास्ते में दण्डवत् लेटकर मुझे प्रणाम किया। इसके बाद महात्मा ने जब मैं कुटिया पर पहुँच गया तो रघुनन्दन प्रसाद को अपने सामने खड़ा करके उससे कहा–तुम बताओ कि तुम यहाँ श्री विश्वनाथ जी के आदेश से आए हो न? रघुनन्दनप्रसाद ने उत्तर दिया हाँ महाराज मैं यहाँ उन्ही के आदेश से आया हूँ। फिर महात्मा ने गुफा की परिक्रमा की और रघुनन्दनप्रसाद से भी कई परिक्रमा कराई। बाद में आज्ञा देकर रघुनन्दनप्रसाद से दण्डवत् प्रणाम कराया और कहा श्री विश्वनाथ जी ने तुम्हें यहाँ भेजा है यह उनका अपना धाम है। इसके बाद मेरी ओर संकेत करके तथा मेरा मान बढ़ाते हुए उस महात्मा ने कहा–यही स्वयं विश्वनाथजी हैं, यही तुम्हारे गुरुदेवजी हैं अब तुम यहाँ से कहीं जाना नहीं जो तुम्हारे लिए यहाँ हुआ है वह और कहीं नहीं होगा। और जितना अधिक से अधिक होना है वह भी यहीं होगा किन्तु तू अपने स्वभाव से लाचार है और तू मानेगा नहीं और यहाँ से चला ही जायेगा। किन्तु याद रखना कि जो यहाँ मिल गया है वह तुझे और कहीं नहीं मिलेगा। तुझे केवल भटकना ही भटकना रहेगा। इतना कहकर वह महात्मा चल पड़े।

इस अवसर पर गाँव के और भी बहुत–से लोग इकट्ठे हो गए थे। गाँव के इन सभी लोगों

ने और स्वयं मैंने महात्मा से भोजन का आग्रह किया किन्तु वह हँस पड़े और कहा मेरा भोजन तो यहीं बहुत है। आश्रम में तब आक और धतूरा बहुत अधिक मात्रा में था। महात्मा ने सेर-डेढ़ सेर धतूरे के पत्ते तोड़कर सबके सामने जल्दी-जल्दी खा लिए, देखने वाले सभी लोगों ने आश्चर्य माना और सोचा इतना आक-धतूरा ये कैसे पचा पायेंगे। हाथ जोड़कर उनसे लोगों ने कहा, महाराज इतना आक धतूरा खा लेने के बाद कुछ दूध तो पी लो। किन्तु इस महात्मा ने लोगों के कहने पर भी दूध तो नहीं पिया किन्तु पास ही खड़े आमले के पेड़ के खोते में वर्षा का जो जल भरा हुआ था उसमें से कई अंजुली पीकर चल दिए। लोगों ने उनके साथ जाने का बहुत ही हठ किया। थोड़ी देर तक गाँव वाले उनके पीछे चले भी किन्तु लगभग एक फर्लांग के चलने के बाद वह महात्मा सबके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। महात्मा के चले जाने के बाद रघुनन्दन प्रसाद कुछ महीने मेरे पास मन लगा कर रहे किन्तु बाद में वे अपनी प्रकृति से विवश होकर आश्रम से चले गए। फिर भी समय-समय पर कुछ योग-प्रचार के कार्यक्रमों में वे मेरे साथ बैठते रहे लालऊ, हाजीपुर, देना के योग प्रचार के कार्यक्रम उन्होंने कराये किन्तु कुछ समय बाद ऐसा संग-दोष मिला कि जिसके कारण मेरे आश्रम से उनका सम्पर्क बिल्कुल ही हट गया। सन् 55-56 के बाद से उनका कोई भी सम्बन्ध हमारे आश्रम से नहीं रहा। फिरोजाबाद में वे एक आश्रम बनाकर वहीं रहकर अपना काम करने लगे।

अभी कुछ दिन पहले जब मैं फिरोजाबाद गया था। इसके 15-20 दिन पूर्व ही मुझे रघुनन्दन प्रसाद की बीमारी का समाचार मिला था। फिरोजाबाद पहुँचने पर मेरे मन में यह तीव्रतम भावना थी कि मैं उनको बीमारी की इस हालत में-एक बार देख आऊँ। अपने मन की इसी भावना को लेकर फिरोजाबाद पहुँचने पर नन्नूमल विद्यालय के छात्रों को पारितोषक-वितरण करने के बाद मैं उन्हें देखने उनके स्थान पर गया किन्तु वहाँ जाने पर उनके सम्पर्क में रहने वाले बच्चों ने मेरे साथ के ब्रह्मचारी बच्चों से कह दिया कि आप महाराज जी से नहीं मिल सकते। हमारे महाराज जी की आज्ञा नहीं है? उनका यह संकेत पाकर मैं लौट आया।

यद्यपि मेरे मन में यह तीव्रतम संकल्प था कि मैं अपने बच्चे की अन्तिम अवस्था में दृढ़तम शक्तिपात करके उसके सिर पर हाथ रखकर और कण्ठ से लगाकर तत्काल लौट आऊँगा, किन्तु उनकी देखभाल करने वाले व्यक्तियों के दुर्व्यवहार के कारण मैं उनसे बिना मिले ही तत्काल आश्रम लौट आया। मैं इस बात को भी भली प्रकार से समझता हूँ कि मेरा बच्चा रघुनन्दन प्रसाद मेरे लिए ऐसे शब्द नहीं कह सकता, जैसे कि मुझे उनके साथ के बच्चों ने बताया। किन्तु यह कुछ स्वार्थी व्यक्तियों की अपनी चेष्टा थी कि मुझे उन्हें देखने न दिया जाय।

इसके बाद ही यह दुःखद समाचार सुनने में आया कि रघुनन्दन प्रसाद अपने इस भौतिक शरीर को छोड़ गये हैं और उनके संगी साथी उन्हें जल–प्रवाह करने के उद्देश्य से काशी ले गये हैं। होनहार यही था। ऐसा मानना ही होगा।

रघुनन्दन प्रसाद जिस समय मेरे पास आश्रम आये थे उस समय उनकी आयु अधिक से अधिक 35–36 या 38 वर्ष की होगी। उस समय वे कोट–पैण्ट और नेक्टाई आदि धारण किये हुए थे। आँखों पर ऐनक लगी थी, अंग्रेजी ढंग के सिर पर बाल बढ़े हुए थे। दीक्षा लेने के बाद उन्होंने यह अपना सभी परिधान छोड़ दिया था। मैंने जो उन्हें टाट पहनाया था, उसी को वे धारण किये रहते थे। इसीलिए वे टाट–बाबा के नाम से मशहूर हो गये थे। एक योग–साधक के रूप में सवाई आश्रम में उनका जीवन अनुकरणीय रहता रहा। उनके वियोग का स्मरण रह–रहकर आता रहता है और आशीर्वाद के भाव उनके लिए मेरे मन से निकलते रहते हैं। अस्तु–

सर्वे भवन्तु सुखिनः,
सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु,
मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।

शक्ति का मूल स्रोत–आत्मा

–सुश्री प्रविणा

आत्मशक्ति सभी शक्तियों का मूल स्रोत है। मनुष्य में अनेक शक्तियाँ हैं। विश्व में भी अनेक शक्तियाँ काम कर रही हैं। लेकिन इन सारी शक्तियों का पारस्परिक संयोजन करने वाली एक सदाकार बनी हुई अखण्ड शक्ति है, सभी जिसकी सत्ता में हैं। हम सभी के अन्दर वह सर्वमंगलकारी परमात्मशक्ति कारगर हो जाये तो जीवन का रूप बदल जायेगा।

आत्मशक्ति क्या? और उसका भान होना क्या?

हमारे अस्तित्व में शरीर, प्राण, वाणी, मन, बुद्धि, संकल्प इत्यादि शक्तियाँ हैं, जिनका हम पोषण, संवर्धन, संस्करण भी कर सकते हैं, या उन पर अपना काबू खोकर उन्हें विकृत होने दे सकते हैं। इन शक्तियों के हम संचालक, व्यवस्थापक हैं। हम प्रकृति–विज्ञान जितना सीखेंगे, उतनी हद तक इन सभी आयामों में स्वास्थ्य और समत्व प्राप्त करके शक्ति सम्पन्न होंगे। इन सभी शक्तियों की संचालक शक्ति ही आत्मा है। इसी को जीवात्मा भी कहते हैं।

सम्पादकीय–

योग साधक का खान–पान

–योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

योग साधक को अपनी साधना को नियमित तथा निर्विघ्न चलाये रखने के लिए अपने खान–पान पर ध्यान देने की सख्त आवश्यकता है।

भगवान् ने भी 'युक्ताहार विहार' का स्पष्ट निर्देश देते हुये इस बात को समझाया है। सात्विक एवं संतुलित आहार लेने पर ही साधना आगे बढ़ सकती है। खान–पान के विषय में कुछ बिन्दुओं पर विचार करते हैं।

1. आयु एवं साधना के प्रकार से भोजन–

सर्वप्रथम साधक को अपनी आयु के अनुसार उचित मात्रा में सात्विक आहार लेना चाहिए। युवावस्था के साधक की जठराग्नि तीव्र होती है अतः उसे आधा पेट भोजन करना चाहिये या कहिये कि भूख के अनुसार भोजन करना चाहिए। जो युवा है तथा प्राणायाम का अभ्यासी है उसे घी, दूध एवं फलों का सेवन अधिक करना चाहिए। योगासन करने वाले को कभी व्रत आदि नहीं करना चाहिए। ऐसा गुरुदेव का आदेश होता था।

यदि साधक 50 वर्ष से अधिक का है तथा राजयोग या ध्यान योग का अभ्यासी है तो उसे कम मात्रा में तथा हलके आहार खिचड़ी, दलिया आदि का प्रयोग करना चाहिए।

साधक को कभी भी प्याज व लहसुन का प्रयोग नहीं करना चाहिए। योग के ग्रन्थों में इसका बिल्कुल निषेध किया हुआ है। ये वस्तुएँ उत्तेजक होती हैं तथा मन को एकाग्र नहीं होने देती हैं। इससे तमोगुण बढ़ता है। प्रकाश के अवरोधक हैं ये पदार्थ।

2. ऋतु अनुसार आहार–

साधक को ऋतु का भी ध्यान रखना चाहिए। आजकल ग्रीष्म ऋतु चल रहा है। साधक को मधुर शाक, फल एवं सब्जियों का प्रयोग करना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में पानी खूब पीना चाहिये। कम से कम 6 या 7 लीटर जल 24 घण्टे में प्रयोग कर ही लेना चाहिए। गर्मियों में खान–पान के व्यतिरेक से उल्टी–दस्त आदि का होना सामान्य बात है। इस मौसम में पेय पदार्थों का प्रयोग करना चाहिए। अधिक भोजन इस ऋतु में श्रेयस्कर नहीं है। जीवन तत्व साधन, प्राणायाम तथा यौगिक क्रियाओं का अभ्यास नियमित करना चाहिए। आँवला तथा बिल्व का प्रयोग अत्यधिक लाभकारी होता है। आँवले को धात्री कहा गया है यह शरीर को पुष्ट तो करता ही है, दीर्घायु भी प्रदान करता है। पेट के मल को जमने नहीं देता है। आँवले को मुरब्बा के रूप

में या चूर्ण, केन्डी आदि के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। इसी प्रकार से बिल्व का शर्बत, मुरब्बा या चूर्ण प्रयोग में ला सकते हैं यह पेट की आंतों के लिये बलदायक है। आँवले से वात, पित्त तथा कफ के तीनों दोष समतावस्था में रहते हैं। इस ऋतु में नींबू का भी प्रयोग करते रहना चाहिए। यदि किसी को अनुकूल रहता हो तो वह शर्बत का भी प्रयोग कर सकता है। वात प्रधान शरीर वाले को बेल का शर्बत हानिकारक हो सकता है इससे शरीर में भारीपन और सन्धियों में (जोड़ों में) दर्द भी हो सकता है। वात तथा कफ प्रधान शरीर वाले को दही का भी प्रयोग कम करना चाहिए। यह भी जोड़ों के दर्द में हानिप्रद होता है। गठिया तथा सन्धिवात रोगों में यह सर्वथा अपथ्य है। साधक को खूब चबा-चबाकर भोजन करना चाहिए। मेरे गुरुदेव भगवान खूब चबा-चबाकर भोजन किया करते थे। चबा कर भोजन करने से भोजन शीघ्र पचता है तथा कब्ज की शिकायत नहीं रहती है। आजकल के मौसम में यदि पेट का मल साफ न हो तो कई प्रकार के उपद्रव हो जाते हैं। गैस, अफारा, उल्टी आदि की शिकायत हो जाती है। ये कुछ बातें हैं जिन पर साधक को अवश्य ध्यान देना चाहिए। षट्कर्म का भी अभ्यास करते रहें।

साधक का लक्ष्य तो वस्तुतः निर्बीज समाधि ही है। सब अन्य साधनायें इसकी पूर्ति के लिए हैं। इसी से जीव का परम कल्याण होता है, भव बन्धन छूटता है।

श्रीमद्भागवत पुराण में एक सुन्दर श्लोक इस विषय में आया है जो दृष्टव्य है—

दानं स्वधर्मो नियमोयमश्च,
श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि।
सर्वे मनोनिग्रह लक्षणान्ताः,
परो हि योगो मनसः समाधिः।

अर्थात्—

दान, अपने धर्म का पालन, यम, नियम, वेदाध्ययन, सतकर्म और ब्रह्मचर्यादि व्रत इन सबका अन्तिम फल यह है कि मन एकाग्र हो जाये, भगवान में लग जाये। मन का समाहित हो जाना ही वस्तुतः योग कहलाता है। इस प्रकार से निष्कर्ष यह निकलता है कि मन की एकाग्रताजन्य समाधि ही परम कल्याण का साधन है।

|| ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः ||

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

देवकी जी के गर्भ में विराजमान अखिलात्मा भगवान के स्तुति हेतु, ब्रह्मा एवं शंकर जी कंस के जेल में समस्त देवता एवं नारदादि ऋषि के साथ प्रकट हुये। वे मधुर वाणी में स्तुति गान करने लगे। प्रभो आप सत्य संकल्प हैं। सत्य ही आपको पाने का श्रेष्ठ साधन है। सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय के अयथार्थता में भी आप सत्य हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश दृष्यमानों के सत्य के कारण आप ही हैं। भगवान आप तो सत्यस्वरूप हैं। हम सभी आपके शरण में आये हैं—

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ||26||

(अ. 2 स्क 10 पूर्वार्ध)

यह संसार एक सनातन वृक्ष है। इसका मूल प्रकृति है। इसकी तीन जड़ें सत, रज व तम हैं। इसके दो फल सुख और दुःख हैं। धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष इस फल के रस हैं। जानने के लिये, श्रोत्र, नेत्र, नासिका और रसना हैं। इस वृक्ष के छाल ही सात धातुयें—रस, रुधिर, मांस, मेद अस्थि, मज्जा और शुक्र हैं। वृक्ष की आठ शाखायें हैं। पंचमहाभूत, मन, बुद्धि और अहंकार। इसमें मुख आदि नव खोड़र हैं। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनन्जय—ये दस प्राण ही इसके पत्ते हैं। इस वृक्ष पर दो पक्षी जीव और ईश्वर रहते हैं। इस संसार वृक्ष के उत्पत्ति के कारण एकमात्र आप ही हैं। आप में ही इसका प्रलय और उद्भव होता है। प्रभो! कुछ विरले लोग ही आप में पूर्ण एकाग्रता से अपना चित्त लगा पाते हैं, और आपका आश्रय लेकर इस संसार सागर को बछड़े के खुर के गड्ढे के समान अनायास ही पार कर जाते हैं। जो आप में भक्तिभाव नहीं रखते तथा बड़ी तपस्या और साधना का कष्ट उठाकर ऊँचे पद पर पहुँच जायें तो भी वे वहाँ से नीचे गिर जाते हैं। परन्तु प्रभो! जिनकी आप में सच्ची निष्ठा है वे अपने साधन मार्ग से गिरते नहीं क्योंकि आप उनके रक्षक हैं। आप समस्त देहधारियों के परम कल्याण के लिये विशुद्ध सत्वमय मंगल विग्रह प्रकट करते हैं। उस विग्रह का आश्रय लेकर आपके जन वेद, कर्मकाण्ड, अष्टांगयोग, तपस्या और समाधि के द्वारा आपकी आराधना करते हैं—

सत्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ
शरीरिणां श्रेय उपायनं वपुः।
वेदक्रियायोगतपः समाधिभि–
स्तवार्हणं येन जनः समीकृते।।34।

(अ. 2 स्क. 10 पूर्वार्ध)

ब्रह्मादि देवताओं ने इस प्रकार कारागार में स्तुति करके अपने–अपने धाम पधार गये। प्रकृति अत्यन्त सौम्य एवं ऐश्वर्य युक्त हो उठी। संत पुरुषों का हृदय अज्ञात कारण से प्रसन्न हो उठा। असुर वृत्त वालों में स्वाभाविक भय संचार हो उठा। जनार्दन के अवतार के समय रात्रि और चारों ओर अंधकार व्याप्त था। उस समय भगवान विष्णु देवरूपणी देवकी के गर्भ से प्रकट हुये। कारागार में दिव्य प्रकाश फैल गया। वसुदेव जी ने देखा एक अद्भुत बालक जिसने अपने चार हाथों में चक्र, गदा, शंख और कमल लिये हुये हैं। सर्वांग दिव्य आभूषणों से सुशोभित है। वसुदेव जी अपनी बुद्धि स्थिर करके भगवान के चरणों में अपना सिर झुका दिया और हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। प्रभो! साक्षात् पुरुषोत्तम आपका स्वरूप केवल आनन्द है। आप समस्त बुद्धियों के एकमात्र साक्षी हैं। आप ही त्रिलोक की रक्षा के लिये, विष्णु, ब्रह्मा एवं रुद्र रूप धारण करते हैं। माता देवकी ने स्तुति करते हुये कहा–प्रभो! आप सर्वशक्तिमान और परम कल्याण के आश्रय हैं। मैं आपकी शरण में हूँ। अतः आप हमारी रक्षा कीजिये। आपका यह चतुर्भुज दिव्य रूप ध्यान की वस्तु है। इसे देहाभिमानी पुरुषों के सामने प्रकट मत कीजिये।

भगवान ने देवकी एवं वसुदेव को उनके पूर्वजन्मों का स्मरण कराते हुये कहा कि यह रूप इसलिये दिखला दिया कि तुम्हें मेरे पूर्व अवतारों का स्मरण हो जाये। देखो! तुम दोनों मेरे प्रति पुत्र भाव तथा निरन्तर ब्रह्मभाव रखना ऐसा करने से स्नेह और चिन्तन से तुम्हें मेरे परम पद की प्राप्ति होगी। ऐसा कहकर अपनी योगमाया से पिता–माता के समक्ष तुरन्त एक साधारण शिशु रूप धारण कर लिया–

इत्युक्त्वाऽऽसीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्म मायया।
पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः।।45।।

(अ. 3 स्क. 10 पूर्वार्ध)

भगवान की प्रेरणा से वसुदेव जी ने अपने पुत्र को लेकर कारागार से बाहर जाने की इच्छा की। उसी समय यशोदा के गर्भ से योगमाया ने जन्म लिया। योगमाया ने द्वारपाल नगर वासियों को प्रगाढ़ निद्रा में सुला दिया। उधर कारागार के विशाल द्वारा तालों से बन्द थे परन्तु भगवान को लेकर ज्यों वसुदेव जी आगे बढ़े द्वार अपने–आप खुलते गये। बरसात का समय, अन्धकार पूर्ण रात्रि यमुना उफान पर परन्तु वसुदेव जी अपने पुत्र को लेकर जल में ज्यों प्रवेश किये, 'वैसे ही जमुना जी ने मार्ग दे दिया। वसुदेव जी नन्दबाबा के गोकुल में जाकर

देखा सभी अचेत निद्रा में पड़े हुये हैं। उन्होंने अपने पुत्र को यशोदा जी के शय्या पर सुला दिया और उनकी नवजात कन्या को लेकर बन्दीगृह लौट आये। बन्दीगृह में योगमाया के प्रभाव से सब यथावत पूर्व की तरह हो गया।

देवकी को पुत्री होने की सूचना पाकर कंस दौड़ता कारागार पहुँचा और उसने बलात देवकी से वह कन्या छीन ली। उस नन्हीं मानजी को कंस ने पैर से पकड़कर एक चट्टान पर दे मारा। परन्तु योगमाया उसके हाथ से फिसलकर आकाश में चली गयी और विराट रूप में अष्टभुजी प्रकट हुई। वे कंस से बोलीं—रे मूर्ख तेरे को मारने वाला किसी और स्थान पर है तू व्यर्थ निर्दोष बालकों की हत्या न किया कर। यह कहकर वे अन्तर्ध्यान हो गई। कंस के मंत्री सेनापति, मित्र राजा सभी आसुरी भाव से भरे हुये अत्यन्त अहंकारी थे। उन्होंने मंत्रणा कर नगरों, गाँवों, बस्तियों में नवजात, दसदिन के हों या कम उम्र के उन्हें मार डालने का आदेश दिया। दुष्ट कंस ने हिंसा प्रेमी राक्षसों को संतपुरुषों की हिंसा करने का आदेश दे दिया। वे अनुचर, इच्छानुसार रूप धारण कर सकते थे। शुकदेव जी कहते हैं—परीक्षित्! जो लोग महान् सन्त पुरुषों का अनादर करते हैं, उनका वह कुकर्म उनकी आयु, लक्ष्मी, कीर्ति, धर्म, लोक—परलोक, विषय—भोग और सब—के—सब कल्याण के साधनों को नष्ट कर देते हैं—

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदति क्रमः।।46।।

(अ. 4 स्क. 10 पूर्वार्ध)

उधर गोकुल में बड़ी धूम—धाम से भगवान का जन्म महोत्सव मनाया गया। सभी ग्वाल बहुमूल्य वस्त्र, गहने और भेंट सामग्री लेकर नन्दबाबा के घर आये। गोपियाँ भेंट लेकर यशोदा जी के पास गयीं।

उत्सव के कुछ दिनों बाद नन्दबाबा कंस का वार्षिक कर चुकाने मथुरा चले गये। वहाँ वसुदेव जी से मिले और उनके पुत्रों एवं योगमाया रूपणी कन्या का कंस द्वारा वध किये जाने पर अपनी शोक सम्वेदना प्रकट किया। वसुदेव जी ने भी उनके पुत्र एवं बलराम जी के बारे में हालचाल लिया और बोले आपको यहाँ अधिक दिन नहीं ठहरना चाहिए, क्योंकि आजकल गोकुल में बड़े—बड़े उत्पात हो रहे हैं। नन्द जी ने सोचा वसुदेव जी का कथन झूठा नहीं हो सकता अतः मन में ''भगवान ही शरण हैं, वे ही रक्षा करेंगे'' और मथुरा से गोकुल छकड़े पर सवार होकर लौटे।

इधर पूतना नाम की राक्षसी जिसका काम था बच्चों को मारना। वह आकाश मार्ग से चल सकती थी। एक दिन नन्दबाबा के गोकुल के पास आकर उसने माया से अपने को एक सुन्दरी युवती बना लिया और गोकुल के भीतर गयी। अनायास ही नन्दबाबा के घर में घुस गयी। वहाँ बाल कृष्ण को शय्या पर सोते हुये देखा। उसने कृष्ण को अपनी गोद में उठा लिया। भद्र महिला जानकर रोहणी और यशोदा जी ने रोक—टोक नहीं की। पूतना ने बालक कृष्ण को अपनी गोद

में लेकर अपने स्तन को उनके मुख में लगा दिया जिस पर घोर विष लगा हुआ था। भगवान ने दोनों हाथों से उसके स्तनों को जोर से दबाकर उसके प्राणों के साथ दूध पीने लगे। अब तो पूतना छटपटाने लगी वह पीड़ा से चोटिल पुकारने लगी–अरे छोड़ दे, छोड़ दे, अब बस कर''। उसके नेत्र उलट गये। सारा शरीर पसीने से लथपथ हो गया। पीड़ा से विचलित पूतना अपने निशाचरी रूप में प्रकट हो गयी। उसके प्राण निकल गये और वह बाहर गोष्ठ में आकर गिरी। भयभीत गोपियों ने देखा बालक श्रीकृष्ण निर्भय होकर उसकी छाती पर खेल रहे हैं। वे झटपट जाकर श्रीकृष्ण को उठा लिया। इसके पश्चात् यशोदा और रोहणी जी ने लोकोपचार करके बच्चे की रक्षा के लिये ग्राम्य देवी–देवताओं को नमस्कार एवं पूजन किया। सर्वआत्मा भगवान ऋषिकेश तुम्हारे इन्द्रियों की और नारायण प्राणों की रक्षा करे। श्वेतद्वीप के अधिपति कृष्ण के चित्त की और योगेश्वर मन की रक्षा करे–

इन्द्रियाणि हृषिकेशः प्राणान् नारायणोऽ वतु।
श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽ वतु।।24।।

(अ. 6 स्क. 10 , पूर्वार्ध)

इस प्रकार गोपियों ने प्रेमपाश में बँधकर भगवान श्रीकृष्ण की रक्षा हेतु प्रार्थना किया। पूतना के भयंकर मृत शरीर को मथुरा से लौटकर नन्दबाबा ने देखा और सारी घटना सुनी। वे आश्चर्यचकित हो कहने लगे अवश्य ही वसुदेव के रूप में किसी ऋषि ने जन्म ग्रहण किया है। सम्भव है वे पूर्व जन्म में कोई बड़े योगी रहे हों, क्योंकि उन्होंने जैसा कहा था, वैसा ही यहाँ उत्पात देखने में आ रहा है–

नूनं बतर्षिः संजातो योगेशो वा समास सः।
स एव दृष्टो ह्युत्पातो यदाहानकदुन्दुभिः।।32।।

नन्दबाबा ने मृत्यु के मुख से बचे हुये अपने बाल गोपाल को गोद में उठाकर बार–बार उसका सिर सूँघकर आनन्दित हुये।

श्री राम लाल प्रभवे नमः

सूचना

आचार्य श्री दासलाल जी महाराज के आगामी योग प्रचार कार्यक्रम

26 मई से 30 मई, 2018

योग सिद्धाश्रम

पुरानी मण्डी जिला मण्डी, हिमाचल प्रदेश

जीवन परिचय—

योगी मत्स्येन्द्रनाथ

श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी

[प्रस्तुत लेख के लेखक स्व. श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकार थे। बनारस में गुरुदेवजी अपने योग–प्रचार कार्यक्रम हेतु जब–जब भी जाया करते थे तब–तब श्री सम्पर्क थे। द्विवेदी जी उन कार्यक्रमों में बड़ी रुचि और श्रद्धा से भाग लेते थे। गुरुदेव से उनके निकटतम प्रस्तुत लेख लेखक की नाथसम्प्रदाय नामक पुस्तक का एक अंश है। इससे पाठक नाथसम्प्रदाय की नई जानकारी पा सकेंगे।

—सम्पादक]

नाथ–परम्परा में आदिनाथ के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण आचार्य मत्स्येन्द्रनाथ ही हैं। हमने यह पाया है कि श्री आदिनाथ शिव का ही नामान्तर है। अतः मानव गुरुओं में मत्स्येन्द्रनाथ ही इस परम्परा के सर्वप्रथम आचार्य हैं। ये गोरखनाथ के गुरु थे। नेपाली जनुश्रुति के अनुसार ये अवलोकितेश्वर के अवतार थे। नाथ परम्परा के आदि गुरु माने जाते हैं और कोलाचार के ये सिद्धपुरुष हैं। काश्मीर के शैवागमों में भी इनका नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। वस्तुतः मध्य–युग के एक ऐसे युगसन्धिकाल में मत्स्येन्द्र का आविर्भाव हुआ था जब कि अनेक साधन मार्गों के ये प्रवर्तयिता मान लिए गये थे। सारे भारतवर्ष में इनके नाम की सैकड़ों दन्त कथाएँ प्रचलित हैं। प्रायः हर दन्तकथा में ये अपने प्रसिद्ध शिष्य गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) के साथ जड़ित हैं। यह कहना कठिन है कि इन दन्तकथाओं में ऐतिहासिक तथ्य कितना है, परन्तु नानामूलों से जो कुछ भी ऐतिहासिक तथ्य पाया जाता है उनके काल, साधन–मार्ग और विचार–परम्परा के ज्ञान के लिए दन्तकथाओं पर भी थोड़ा–बहुत निर्भर रहा जा सकता है।

प्रथम प्रश्न इनके नाम का है। योगि–सम्प्रदाय में 'मछन्दरनाथ' नाम प्रसिद्ध है। परवर्ती संस्कृत ग्रन्थों में इसका शुद्ध रूप मत्स्येन्द्रनाथ दिया हुआ है। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि साधारण योगी मत्स्येन्द्रनाथ की अपेक्षा 'मछन्दरनाथ' नाम को ही अधिक पसन्द करते हैं। श्री चन्द्रनाथ योगी जैसे सुधारक मनोवृत्ति के महात्मा को बड़े दुःख के साथ कहना पड़ा है कि मत्स्येन्द्रनाथ को मच्छन्दर और गोरक्षनाथ को गोरखनाथ कहना योगि सम्प्रदाय के घोर पतन का सबूत है। परन्तु बहुत प्राचीन पुस्तकों में इनके इतने नाम पाये जाते हैं जिससे कि इनके प्राकृत नाम की प्राचीनता निस्सन्दिग्ध रूप से प्रकट होती है और यह बात सन्देहमय हो जाती है कि परवर्ती ग्रन्थों में व्यवहृत मत्स्येन्द्रनाथ नाम ही शुद्ध और वास्तविक है।

मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा रचित कई पुस्तकें नेपाल की दरबार लाइब्रेरी में सुरक्षित हैं। उनमें एक का नाम है 'कौलज्ञान निर्णय'। इसकी लिपि को देखकर स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं.

हरप्रसाद शास्त्री ने अनुमान किया था कि यह ईसवी सन् की नवीं शताब्दी का लिखा हुआ है। हाल ही में कलकत्ता विश्वविद्यालय के (अब विश्वभारती, शान्ति निकेतन के) अध्यापक डॉ. प्रबोधचन्द्र बागची ने उस पुस्तक को तथा मत्स्येन्द्र नाथ की लिखी अन्य चार पुस्तकों को बहुत सुन्दर सम्पादित संस्करण प्रकाशित कराया है। बाकी चार पुस्तकें ये हैं—अकुलवीरतन्त्र'—ए, 'अकुलवीरतन्त्र'—बी, 'कुलानन्द और ज्ञानकारिका'। डॉ. बागची के अनुसन्धान से ज्ञात हुआ है कि वस्तुतः इन ग्रन्थों की हस्तलिपि ईसवी सन् की ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य भाग की है, नवीं शताब्दी की नहीं। इन पुस्तकों की पुष्पिका में आचार्य का नाम कई प्रकार से लिखा गया है। नीचे वे दिये जा रहे हैं—

कौलज्ञान निर्णय में—मच्छघ्नपाद, मच्छेन्द्रपाद, मत्स्येन्द्रपाद और मीनपाद।

अकुलवीर तन्त्र में—(ए) मीनपाद

अकुलवीर तन्त्र में—(ब) मच्छेन्दपाद

कुलानन्द में—मत्स्येन्द्र

ज्ञानकारिका में—मच्छिन्द्रनाथपाद

मच्छेन्द्र, मच्छिन्द्र और मच्छेन्द आदि नाम मत्स्येन्द्रनाथ के अपभ्रंश रूप हो सकते हैं पर 'मच्छघ्न' शब्द मत्स्येन्द्र का प्राकृत रूप किसी प्रकार नहीं हो सकता। इस नाम पर से हर प्रसाद शास्त्री का अनुमान है कि मत्स्येन्द्रनाथ मछली मारने वाली कैवर्त जाति में उत्पन्न हुए थे। 'कौलज्ञान निर्णय' से भी मत्स्यघ्न नाम का समर्थन होता है। इस ग्रन्थ से पता चलता है कि मत्स्येन्द्रनाथ थे तो ब्राह्मण परन्तु एक विशेष कारण से उनका नाम 'मत्स्यघ्न' पड़ गया था। कीर्तिकेय ने 'कुलागम शास्त्र को' चुराकर समुद्र में फेंक दिया था। तब उस शास्त्र का उद्धार करने के लिए स्वयं भैरव अर्थात् शिव ने मत्स्येन्द्र नाथ का अवतार धारण कर समुद्र में घुसकर उस शास्त्र का भक्षण करने वाले मत्स्य का उदर विदीर्ण करके शास्त्र का उद्धार किया। इसी कारण से वे 'मत्स्यघ्न' कहलाये।

यह ध्यान देने की बात है कि अभिनव-गुप्तपाद ने भी 'मच्छन्द' नाम का ही प्रयोग किया है और रूपकात्मक अर्थ समझकर उसकी व्याख्या की है। इनके मत से आतान-वितान-वृत्यात्मक जाल को छिन्न करने के कारण उनका नाम 'मच्छन्द' पड़ा। और तन्त्रालोक के टीकाकार जयद्रथ ने भी इसी प्रकार का एक श्लोक उद्धृत किया है जिसके अनुसार 'मच्छ' चपल चित्तवृत्तियों को कहते हैं, ऐसी वृत्तियों को छेदन करने के कारण ही वे 'मच्छन्द' कहलाये।

कबीर-सम्प्रदाय में अब भी 'मच्छ' शब्द मन अर्थात् चपल चित्तवृत्तियों को कहते हैं।

यह परम्परा अभिनवगुप्त तक जाती है। उसके पहले भी ऐसी परम्परा नहीं रही होगी, यह नहीं कहा जा सकता। प्राचीनतर बौद्ध सिद्धों के पदों से इस प्रकार के प्रमाण संग्रह किये जा

सके हैं कि 'मत्स्य' प्रज्ञा का वाचक था। इस प्रकार मत्स्येन्द्रनाथ की जीवितावस्था में ही, मच्छघ्न के प्रतीकात्मक अर्थ में उनका कहा जाना असंगत कल्पना नहीं है।

एक और प्रश्न उठता है कि मत्स्येन्द्रनाथ और मीननाथ एक ही व्यक्ति है या भिन्न–भिन्न। 'हठयोग प्रदीपिका' में मीननाथ को मत्स्येन्द्रनाथ से पृथक् व्यक्ति बताया गया है। डॉ. बागची कहते हैं कि यह बात बाद की कल्पना जान पड़ती है। 'कौलज्ञान निर्णय' में कई जगह मीननाथ का नाम आने से उन्हें इस विषय में कोई सन्देह नहीं कि मत्स्येन्द्रनाथ और मीननाथ एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं। साम्प्रदायिक अनुश्रुतियों के अनुसार मीननाथ मत्स्येन्द्रनाथ के पुत्र थे।

डा. बागची इस मत को परवर्ती कल्पना मानते हैं। परन्तु सिद्धों की सूची देखने से जान पड़ता है कि यह परम्परा काफी पुरानी है। तिब्बती अनुश्रुति के अनुसार मीननाथ मत्स्येन्द्रनाथ के पिता थे। इस प्रकार यह विचित्र उलझन है।

(1) 'कौलज्ञान निर्णय' के अनुसार मीननाथ मत्स्येन्द्रनाथ से अभिन्न (2) साम्प्रदायिक अनुश्रुति में वे मत्स्येन्द्रनाथ के पुत्र हैं, और (3) तिब्बती परम्परा में वह स्वयं मत्स्येन्द्रनाथ के ही पिता हैं, फिर (4) नेपाल में प्रचलित विश्वास के अनुसार वे मत्स्येन्द्रनाथ के छोटे भाई हैं।

'वर्णरत्नाकार' में प्रदत्तनाथ सिद्धों की सूची काफी पुरानी है। इसमें प्रथम सिद्ध का नाम मीननाथ है और 41वें सिद्ध का नाम मीन है। प्रथम सिद्ध मीननाथ निश्चय ही मत्स्येन्द्रनाथ हैं। 41 वें मीन कोई दूसरे हैं जो मीननाथ की शिष्य परम्परा में पड़ने के कारण उनके पुत्र मान लिये गये होंगे। परन्तु 'वर्ण रत्नाकार' से स्पष्ट रूप से दो बातें मालूम होती हैं—(1) यह कि मीननाथ और मत्स्येन्द्र नाथ एक ही प्रथम नाथ सिद्ध के दो नाम हैं और (2) यह कि 'हठयोग प्रदीपिका' में मत्स्येन्द्र के अतिरिक्त भी जो एक मीन नाम आता है उसका कारण यह है कि वस्तुतः ही नाथ परम्परा में एक और भी मीन नामधारी सिद्ध हो चुके हैं।

मत्स्येन्द्रनाथ और मीननाथ के एक होने का एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण यह है कि 'तन्त्रालोक' की टीका में जयद्रथ ने दो पुराने श्लोक उद्धृत किये हैं इनमें शिव ने कहा है कि मीननाथ नामक महासिद्ध 'मच्छन्द' ने कामरूप नामक महापीठ में मुझसे योग पाया था।

निस्सन्देह टीकाकार के मन में 'कौलज्ञान निर्णय' नाम ग्रन्थ ही रहा होगा। क्योंकि उन्होंने लिखा है कि यह मच्छन्द 'सकुल कुल शास्त्रों के अवतारक रूप में प्रसिद्ध हैं। यह लक्ष्य करने की बात है कि कौलज्ञान की 'पुष्पिका' में बराबर मच्छन्द या मत्स्येन्द्रनाथ को 'योगिनी कौल ज्ञान' का अवतारक बताया गया है।

इस प्रकार यह निर्विवाद है कि प्राचीन काल में मत्स्येन्द्रनाथ का नाम ही मीन या मीननाथ माना जाता था।

ये मत्स्येन्द्रनाथ कौन थे और किस कुल तथा देश में उत्पन्न हुए थे? इनके रचित ग्रन्थ

क्या-क्या है? इनका साधन मार्ग क्या था? इत्यादि प्रश्न सहज-समाधेय नहीं है। सारे देश में इनके तथा इनके गुरु भाई जालंधर नाथ औ शिष्य गोरक्षनाथ के सम्बन्ध में इतनी तरह की दन्तकथाएँ प्रचलित हैं कि उनके आधार पर इतिहास को खोज निकालना काफी कठिन है। फिर भी सभी परम्पराएँ कुछ बातों में मिलती हैं इसीलिए उन पर ऐतिहासिक काल का अनुमान हो सकता है।

किसी-किसी पण्डित ने बौद्ध सहजयानियों के आदि सिद्ध लुईपाद और मत्स्येन्द्रनाथ को एक ही व्यक्ति बताने का प्रयत्न किया है। लुई शब्द को लोहित (=रोहित = मत्स्य) शब्द का अपभ्रंश मानकर इस मत की स्थापना की गई है। इस कल्पना का एक और भी कारण यह है कि तिब्बती अनुश्रुति के अनुसार लुईपाद का एक और नाम मत्स्यान्त्राद (=मछली की अन्तड़ी के उपयोग करने वाला) दिया हुआ है। यह नाम मच्छघ्न नाम से मिलता है।

इस प्रकार उपर्युक्त कल्पना को बल मिलता है। यदि यह कल्पना सत्य हो तो मत्स्येन्द्रनाथ का समय आसानी से मालूम हो सकता है। लुईपाद के एक ग्रन्थ में दीपकर श्रीज्ञान ने सहायता दी थी। ये दीपकर श्रीज्ञान सन् 1938 ई. में 58 वर्ष की उम्र में विक्रमशिला से तिब्बत गये थे अतएव लुईपाद का समय इसी के आस-पास होगा। परन्तु कई कारणों से लुईपाद और मत्स्येन्द्रनाथ के एक व्यक्ति होने में सन्देह है।

हरप्रसाद शास्त्री ने लिखा है कि नेपाल के बौद्ध लोग गोरक्षनाथ पर तो बहुत नाराज हैं पर मत्स्येन्द्रनाथ को अवलोकितेश्वर का अवतार मानते हैं। सुप्रसिद्ध तिब्बती ऐतिहासिक तारानाथ ले लिखा है कि गोरक्षनाथ पहले बौद्ध थे। उस समय उनका नाम अनंगवज्र था (यद्यपि शास्त्रीजी को कोई विश्वसनीय प्रमाण मिला है कि गोरक्षनाथ का पुराना नाम अनांगवज्र नहीं बल्कि रमणवज्र था।) इसलिए नेपाली बौद्ध उन्हें धर्मत्यागी समझकर घृणा करते हैं। परन्तु मत्स्येन्द्रनाथ पर जब उनकी श्रद्धा है तो मानना पड़ेगा कि वे धर्मत्यागी नहीं हो सकते।

शास्त्री जी का अनुमान है कि मत्स्येन्द्र नाथ कभी बौद्ध थे ही नहीं, क्योंकि मत्स्येन्द्रनाथ का पूर्व नाम मच्छघ्न था अर्थात् वे मछली मारने वाले कैवर्त थे। बौद्धों के स्मृति ग्रंथों में लिखा है कि जो लोग निरन्तर प्राणी-हत्या करते हैं उनको-जैसे जाल फेंकने वाले मल्लाह, कैवर्त आदि को-बौद्ध धर्म में दीक्षित नहीं करना चाहिए।

इसलिए मच्छघ्ननाथ बौद्ध नहीं हो सकते। वे नाथ पंथियों के ही गुरु थे फिर भी नेपाली बौद्धों के उपास्य हो सके हैं। शास्त्रीजी की युक्ति सम्पूर्ण रूप से ग्राह्य नही मालूम होती क्योंकि बौद्ध सिद्धों के कम से कम एक मीनपा ऐसे अवश्य हैं जिनकी जाति मछुआ है। परन्तु आगे हम जो विचार करने जा रहे हैं उससे इतना निश्चित है कि शास्त्रीजी का यह मन्तव्य कि मत्स्येन्द्रनाथ कभी बौद्ध थे ही नहीं ठीक है। तिब्बती ऐतिहासिक तारानाथ के अनुसार गोरक्षनाथ पहले बौद्ध तान्त्रिक ही थे पर 12 वीं शताब्दी में सेन राजवंश के अन्त के साथ वे शिव (ईश्वर)

के उपासक हो गये क्योंकि वे मुसलमान विजेताओं का विरोध नहीं करना चाहते थे।

'गोरक्ष शतक' के दूसरे श्लोक में मीननाथ को अपना गुरु मानकर गोरक्षनाथ ने स्तुति की है। वही श्लोक 'गोरक्ष–सिद्धान्त संग्रह' में 'विवेक मार्तण्ड' का कहकर उद्धत है। इसमें मीननाथ की स्तुति है। प्रसंग से ऐसा जान पड़ता है कि ये मीननाथ मत्स्येन्द्रनाथ ही हैं। इसमें कहा गया है कि जिन्होंने मूलाधारबंध उड्डियानबंध, जालंधरबंध आदि योगाभ्यास से हृदय–कमल में निश्चय दीप की ज्योति सरीखी परमात्मा की कला का साक्षात्कार करके युग–कल्प आदि के रूप में चक्कर काटने वाले काल के रहस्यों को तथा समस्त तत्वों का योगाभ्यास से जयकर लिया था और स्वयं ज्ञान और आनन्द के महासमुद्र श्री आदिनाथ का स्वरूप हो गये थे उन श्री मीननाथ को प्रणाम है।

उसी ग्रन्थ में मीननाथ का कहा हुआ एक श्लोक है जिसमें बताया गया है कि योगी लोग जिस शिव की उपासना करते हैं उनके कोपानल से कामदेव जलकर भस्म हो गया था। इस पर से ग्रन्थ संग्रहीता ने निष्कर्ष निकाला है कि योगी लोग काम भाव के विरोधी हैं और उनका मत पूर्ण ब्रह्मचर्य पर आधारित है। स्पष्ट ही स्मर दीपिका के ग्रन्थ कार मीननाथ यह मीननाथ नहीं हो सकते क्योंकि दोनों के प्रतिपाद्य परस्पर–विरुद्ध हैं। वस्तुतः स्मर, दीपिकाकार कोई दूसरे मीननाथ हैं और नाथ मार्ग से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह ध्यान देने की बात है कि 'गोरक्ष शतक' के टीकाकार लक्ष्मीनारायण भी मत्स्येन्द्रनाथ और मीननाथ को एक ही मानते हैं।

नेपाल दरबार लाइब्रेरी में 'नित्याह्निक तिलकम्' नामक पुस्तक है। इसमें एक जगह पचीस कौल सिद्धों के नाम, जाति, जन्म, स्थान, चर्यानाम, गुप्तनाम, कीर्तिनाम और उनकी शक्तियों के नाम दिए हुए हैं। डॉ. बागची ने 'कौल ज्ञान निर्णय' की भूमिका में इस सूची को उद्‌धृत किया है। इस सूची में एक नाम मत्स्येन्द्रनाथ भी है। इसके अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ का विवरण इस प्रकार है–

नाम–विष्णु शर्मा

जाति–ब्राह्मण

जन्म–भूमि–बारपा (बंग देश)

चर्यानाम–श्री गौडीशदेव

पूजानाम–श्री पिप्लीशदेव

गुप्तनाम–श्री भैरवानन्द नाथ

कीर्तिनाम–तीन थे। ये भिन्न–भिन्न अवसरों पर भिन्न–भिन्न सिद्धियों को दिखाने से प्राप्त हुए थे। प्रथम कीर्तिनाम वीरानंदनाथ था, पर जब इन्द्र से अनुगृहीत हुए तब इन्द्रानंददेव हुआ, फिर जब मर्कट नदी में बैठकर समस्त मत्स्यों को कर्षित किया तो मत्स्येन्द्रनाथ नाम

पड़ा। यह कीर्तिनाम ही देश–विश्रुत हुआ है।

शक्तिनाम–इनकी शक्ति का नाम श्री ललिताभैरवी अम्बी पापू था। चन्द्रद्वीप के बारे में तरह–तरह के अटकल लगाये गये हैं। किसी के मत से यह कलकत्ता के दक्षिण में अवस्थित सुन्दर वन है (क्योंकि सुन्दर वस्तुतः 'चन्द्र' का ही परवर्ती रूपान्तर है)। और किसी–किसी के मत से नवाखाली जिले में। पागलबाबा ने मुझे बताया था कि चन्द्रद्वीप कोई आसाम का पहाड़ी स्थान है जो नदी के बहाव से घिरकर द्वीप जैसा बन गया है। अब भी योगी लोग उस स्थान पर तीर्थ करने जाते हैं। चन्द्रद्वीप कामरूप के आस–पास ही कोई जगह होगी क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने कामरूप में साधना की थी। तन्त्रालोक की टीका से भी इसी अनुमान की पुष्टि होती है। नदी के बहाव से घिरे हुए स्थान को पुराने जमाने में द्वीप कहते थे। 'नवद्वीप' नामक प्रसिद्ध विद्यापीठ–नगर इसी प्रकार के बहावों के मध्य में स्थित नौ छोटे छोटे टापुओं (द्वीपों) को मिलाकर बसा था। 'रत्नाकर जो पम कथा' नामक भोट ग्रन्थ से भी चन्द्रद्वीप का लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) नदी के भीतर होना पुष्ट होता है। परन्तु 'कौलज्ञान निर्णय' 16वें पटल से जान पड़ता है कि चन्द्रद्वीप कहीं समुद्र के आसपास था। 'योगिसंप्रदाया विष्कृति' में चन्द्रगिरि नामक स्थान को गोरक्षनाथ की जन्मभूमि कहा गया है। यह स्थान गोदावरी गंगा के समीपवर्ती प्रदेश में बताया गया है।

सिद्धयोग मासिक पत्रिका के ग्राहकों से नम्र निवेदन

जो सदस्य बन्धु इस वर्ष का शुल्क अभी तक जमा नहीं कर पाये वे शीघ्र ही शुल्क जमा कर दें ताकि समय पर आपको पत्रिका मिल सके। वार्षिक शुल्क 180 रु. तथा आजीवन (दस वर्ष) शुल्क 1000 रु. है। शुल्क आप सीधे बैंक खाते में जमा कर सकते हैं। विवरण निम्न है–

दासलाल व विनोद कुमार शर्मा

A/c No.–03711010182453

I.F.S.C.–CNRB 0000371

कैनरा बैंक शाखा, एत्मादपुर, आगरा।

आश्रम समाचार

श्री सिद्धगुफा सवांई धाम आगरा का श्री रामनवमी योग महामेला एवं श्री महाप्रभु जी की पावन जयन्ती समारोह सम्पन्न

मार्च 23, 24 एवं 25 को श्री सिद्ध गुफा सवांई धाम का योग महामेला एवं श्री प्रभुजी की पावन जयन्ती प्रतिवर्ष की भाँति धूमधाम से मनाई गई। उत्सव के प्रथम दिन 23 मार्च को प्रातः की आरती के पश्चात् श्री गुरु गीता का सामुहिक पाठ किया गया। 24 मार्च को भी यह क्रम रहा। पाठ के बाद विद्वान साधकों के प्रवचन हुये। कार्यक्रम का शुभारम्भ करते हुये आचार्य श्री दासलाल जी ने इस पावन भूमि के महत्व को बताते हुये कहा कि हम सब लोग धन्य है जो श्री प्रभु जी के चरण शरण है तथा इस पवित्र रज का सेवन कर रहे है। गुरु गीता मे वर्णित गुरु तत्व की विवेचना करते हुये उन्होंने कहा ''नास्ति तत्वं गुरोः परम्'' अर्थात् गुरु तत्व से आगे कोई तत्व नही है और हम सब उसी परम तत्व की उपासना करते है।

सालवन हरियाणा से पधारे भाई सोमदत्त जी ने गुरु तत्व पर अपने उद्गार प्रकट किये और कहा कि गुरुदेव अपने बच्चों का सदा कल्याण ही करते है, उनके योग क्षेम का स्वयं वहन करते हैं।

अम्बाला से पधारे ब्रह्मचारी श्री वीरेन्द्र स्वरूप जी ने कहा कि हम लोगो का लक्ष्य निर्बीज समाधि की प्राप्ति करना ही है। श्री मद्भागवत् की विवेचना करते हुये उन्होंने कहा कि महायोगी शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को समाधि के द्वारा अपने स्वरूप मे स्थित होने की बात ही कही है। साथ ही उन्होंने भागवत् में वर्णित सद्यः मुक्ति एवं क्रम मुक्ति का वर्णन किया।

सद्यः मुक्ति का मार्ग सिद्धयोग का मार्ग है जिसमे गुरुदेव की कृपा से सद्यः समाधि की प्राप्ति हो जाती है इसे ही शुक मार्ग भी कहते है। दूसरा मार्ग वामदेव का मार्ग कहलाता है जिसमें साधक शनैः शनैः क्रम से योग के अंगो का अभ्यास करते–करते कालान्तर मे समाधि को प्राप्त किया करता है। चित्त शोधन के पश्चात् ही समाधि मे प्रवेश पाता है साधक।

दिल्ली आर.के.पुरम आश्रम से आये ब्रह्मचारी देवेन्द्र ने समाधि प्राप्ति के विभिन्न उपायों का उल्लेख किया जैसा पातञ्जल योग शास्त्र मे वर्णित है। इनमें 'वीतराग विषयं वा चित्तम्' तथा ईश्वर प्रणिधान का उपाय सहज ही समाधि प्रदान करने वाला माना जाता है।

इलाहाबाद से आये श्री जनार्दन जी ने कुण्डलिनी प्रबोधन की आवश्यकता पर बल दिया और कहा कि इस शक्ति के जग जाने पर सभी साधनायें सहज हो जाती है अतः जाप एवं ध्यान के द्वारा इसके प्रबोधन का प्रयास करना चाहिए। इन तीन दिनों मे प्रातः 6 से 8 बजे तक डॉ. वीरेन्द्र स्वरूप जी साधकों को आसन प्राणायाम, कपालभाति, उज्जायी आदि क्रियाओं का अभ्यास साधकों को कराते रहे। 24 मार्च को ही दोपहर में इन क्रियाओं का षटकर्म के साथ प्रदर्शन भी कराया गया। षटकर्म न्योलि आदि श्री रघुराज जी ने बड़े ही निपुणता से किया क्योंकि उनका पचासों वर्षो से इन क्रियाओं का दृढ़ अभ्यास बना हुआ है।

25 मार्च को दोपहर से शाम तक श्री गुरुदेव का पूजन होता रहा तथा ब्रह्म भोज एवं भण्डारा भी अनवरत चलता रहा। जो शाम के 5–6 बजे तक चलता रहा। इस दिन रात्रि को जागरण एवं संकीर्तन का कार्यक्रम रातभर चलता रहा।

प्रातः 4 बजे मंगला आरती के साथ ही कार्यक्रम का समापन हुआ। इस प्रकार से बहुत ही धूमधाम से कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। 10–15 हजार साधकों ने भोजन प्रसाद पाया और 26 मार्च की प्रातः विदाई प्रसाद लेकर अपने–अपने गन्तव्य की ओर चलने लगे। इस प्रकार यह भव्य कार्यक्रम निर्विघ्नतया सम्पन्न हुआ।

जय गुरुदेव जी की।

योग की शिक्षा क्यों ?

–महात्मा नारायण स्वामी

[योग की शिक्षा और साधना मानव के लिए क्यों आवश्यक है इस पर पढ़िए महात्मा नारायण स्वामी जी के अपने विचार।
–सम्पादक]

इस देश में अनेक विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से योग की परिभाषायें की हैं, परन्तु योगियों के मुकुटमणि, योग शिरोमणि पतंजलि ने योग की परिभाषा इस प्रकार की है– योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। अर्थात् योग चित्त की वृत्तियों के रोक देने का नाम है। चित्त वृत्तियां क्या हैं? उनके रोकने का भाव क्या है? इन प्रश्नों के समझे बिना परिभाषा का भाव समझा नहीं जा सकता। इन प्रश्नों को समझने से पहले यह समझ लेना उपयोगी होगा कि चित्त की इन वृत्तियों को रोकने की जरूरत क्यों होती है?

जीवात्मा और उसका कर्त्तव्य

योगदर्शन, ईश्वर जीव और प्रकृति तीनों की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करता है। इनमें से जीव है जिसके कर्त्तव्य में सहायता देने के लिए इस दर्शन की रचना हुई है। वेद में ईश्वर को 'वाचिव्याहृतायाम्'' कहा गया है। अर्थात् ईश्वर वाच्य के वाचक व्याहृति ''भूर्भुवः स्वः' हैं भू सत्तायाम् धातु से 'भूः' सत् के अर्थ में और भुवः का अर्थ अवचिन्तने धातु से चित्त है और स्वः आनन्द को कहते हैं। इस प्रकार 'भूर्भुवः स्वः' का अर्थ सच्चिदानन्द है। 'भूर्भुवः स्व अथवा सच्चिदानन्द शब्द पर विचार करने से जीव के कर्त्तव्य का उद्देश्य निश्चित हो जाता है। सत् प्रकृति को कहते हैं, सत् + चित् जीव का नाम है, सच्चिदानन्दन ईश्वर को कहते हैं। सच्चित् जीव की एक ओर प्रकृति का गुण सत् और दूसरी ओर ब्रह्म का स्वरूप आनन्द है। प्रश्न यह है कि जीव को अपने कर्त्तव्य का उद्देश्य किस को प्राप्त करना, बनाना चाहिए? सत् जो प्रकृति का गुण है वह जीव को पहले ही से प्राप्त है इसलिए प्राप्त की प्राप्ति का यत्न व्यर्थ है परन्तु ब्रह्म का स्वरूप ''आनन्द'' जीव के कर्त्तव्य का अन्तिम उद्देश्य आनन्द को प्राप्त करना ठहरता है। उस (जीव) के पूरे उद्देश्य को इस प्रकार कह सकते हैं।

''प्राप्त संसार (प्रकृति रूप जगत) को इस प्रकार काम में लाना चाहिए कि जिससे वह अन्त में आनन्द स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति का साधन बन जावे।'' आत्मा के स्वाभाविक गुण ज्ञान और प्रयत्न हैं। जीव का यह ज्ञान और प्रयत्न (कर्म) रूप, पुरुषार्थ जीव के बाहर (जगत) में भी काम करता है और जीव के अन्दर भी। जब वह बाहर काम करता है तब उसका नाम बहिर्मुखी वृत्ति होता है और जब वह अन्दर काम करता है तब उसका नाम अन्तर्मुखी वृत्ति होता है। जीव चूंकि प्रयत्नशील है इसलिए दोनों वृत्तियों में से एक न एक सदैव जारी रहती है। यदि बहिर्मुखी

बन्द होती है स्वयमेव अन्तर्मुखी वृत्ति काम करने लगती है और जब अन्तर्मुखी वृत्ति बन्द होती है तब बहिर्मुखी वृत्ति स्वतः अपना काम जारी कर देती है। बहिर्मुखी वृत्ति जब जारी रहती है तब जीव अन्तःकरणों के माध्यम से जगत् में इन्द्रियों द्वारा काम किया करता है परन्तु अन्तर्मुखी वृत्ति होने पर वह आत्मानुभव और परमात्मदर्शन किया करता है।

योग दर्शन की शिक्षा

महामुनि पतञ्जलि ने अपने कल्याणकारी दर्शन में उपर्युक्त उद्देश्य को लक्ष्य में रखते हुए, इसीलिए यह शिक्षा दी है कि जगत् को इस प्रकार काम में लाओ कि जिससे यह भी अधिक से अधिक काम की वस्तु सिद्ध हो और अन्तिम उद्देश्य की पूर्ति का साधन भी बन सके। इसके लिए उन्होंने दो कर्त्तव्य बतलाये हैं।

पहला कर्त्तव्य–चित्त की वृत्तियों को एकाग्रचित्त करना। चित्त के इस प्रकार एकाग्र हो जाने से मनुष्य को, संसार अधिक से अधिक सुखदायक बन सकता है।

सांसारिक सुख का कारण

सांसारिक सुख की तह में घुसने से पता लगता है कि दुनिया में सुख किसे कहते हैं। वह न अच्छे–अच्छे स्वादिष्ट भोजनों में है न अच्छी–अच्छी कीमती पोशाकों के पहनने में, और न संसार के अन्य विषयों में। सुख असल में चित्त की एकाग्रता में है। भोजनादि विषय के साथ जब चित्त लग जाता है, वह विषय सुखदाई प्रतीत होने लगता है और जिस विषय के साथ चित्त नहीं लगता है वह रूखा–सूखा निस्सार सा प्रतीत होने लगता है। एक मनुष्य अपने अनुकूल अत्यन्त स्वादिष्ट भोजन करते हुए उसका आनन्द ले रहा है, परन्तु अचानक पुत्र की मृत्यु की खबर सुनने और चित्त के भोजन से हटकर पुत्र की स्मृति की ओर चले जाने से अब वह भोजन उसे सुखदाई नही रहा। अब उसका एक–एक लुकमा गले में अटकता है। कारण स्पष्ट है, अब चित्त भोजन के साथ नहीं रहा। अस्तु, योग दर्शन ने चित्त की एकाग्रता की उपयोगिता बतलाते हुए शिक्षा यह दी है कि इस चित्त की एकाग्रता को इस प्रकार काम में लाना चाहिए कि जिससे उसका मुंह चित्त के निरोध की ओर फेरा जा सके।

चित्त का निरोध क्यों होना चाहिए?

जब तक चित्त एकाग्रित रहता है, तब तक चित्त की वृत्तियां अपने काम में लगी हुई हैं और तत्परता के साथ अपना काम कर रही हैं। यहाँ तक आत्मा की बहिर्मुखी वृत्ति ही काम करती है। चित्त की एकाग्रता बहिर्मुखी वृत्ति की सीमा के अन्तर्गत ही है। परन्तु उद्देश्य अन्तर्मुखी वृत्ति का जाग्रत करना है। उसके जाग्रत करने या काम में लाने का साक्षात् साधन अज्ञात है। इसलिए असाक्षात् साधन से काम लिया जाया करता है और वह असाक्षात साधन यह है कि चित्त की वृत्तियों का निरोध करके बहिर्मुखी वृत्ति का काम बन्द कर दिया जाये।

इसीलिए योगदर्शन में चित्त की वृत्तियों के निरोध का विधान किया गया है। बहिर्मुखी वृत्ति के बन्द होने पर अन्तर्मुखी वृत्ति स्वयंमेव जाग्रत होकर अपना काम करने लगती है।

चित्त और उसकी वृत्तियाँ

चित्त को यदि एक सरोवर मानें तो उस सरोवर में उठी हुई लहरों को चित्त की वृत्तियां मानना पड़ेगा। इस चित्त रूपी सरोवर का एक किनारा बुद्धि से मिला हुआ आत्मा रूपी गंगा की ओर है और उसका दूसरा विरोधी किनारा इन्द्रियों से मिला हुआ जगत् की ओर है। चित्त रूपी सरोवर में उठने वाली वृत्ति रूपी लहरें पांच प्रकार की हैं–(1) प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम (आप्तोदेश), (2) (विपर्यय) अर्थात् मिथ्याज्ञान, (3) विकल्प अर्थात् वस्तु शून्य कल्पित नाम, (4) निद्रा–सोना, (5) स्मृति अर्थात् पूर्व श्रुत और दृष्ट पदार्थ का स्मरण। चित्त में जितनी अच्छी या बुरी वृत्तियाँ हो सकती हैं वे सभी इन्हीं पाँच प्रकारों के अन्तर्गत हुआ करती हैं। इन वृत्तियों को समष्टि रूप से अच्छा या बुरा नहीं कह सकते। इनमें दोनों प्रकार की बातें सम्मिलित हैं। परन्तु ये सब इन्द्रियों के माध्यम से जगत् की ओर ले जाने वाली हैं अतः हेया है।

षड्–चक्र वर्णन

प्रेषक–रुद्रदत्त चतुर्वेदी, लखनऊ

मूल कमल दल चार कौ, लाल पखुड़ी रंग,
गौरीसुत वासा कियौ, छः सौ जप है कंग।।

पीत वर्ण, षड्दल कमल, नाभि तरे कौ भाग,
षड् सहस्त्र को जाप है, वृष सावित्री नाल।।

आठ पंखुड़ी कमल है, नील वर्ण कौ जान,
विष्णु–लक्ष्मी वासा कियौ, षड्सहस्त्र कौ जाप।।

हृदय बसै, द्वादश कमल, ताकौ रंग है श्वेत,
षड् सहस्त्र कौ जाप ले सो सिर तक नागेश।।

सोडस दल्त कौ कमल है, कंठ वास शशि रूप
जाप सहस्त्र तहाँ जपै, भेद लहै अति गूप।।

अग्नि चक्र दो दल कमल, त्रिकुटी धाम अनूप
जप सहस तंह पर जपै लखै वटी स्वरूप

दस हजार कौ कमल है नव मंडल में बास
जप सहस्त्र तहं जपै तेज पुंज परकाश।।

योग युक्ति कर खोज लें सुरति निरति
कर चीन्ह, दस प्रकार अनहद बजे होय मह लवलीन।।

(यह गजरौला में एक महात्मा जी ने लिखाया था।)

योग-सर्वदर्शन-सम्बल

श्री डॉ. बदरीनारायण पञ्चोली

[डॉ. पञ्चोली लाल बहादुर शास्त्री संस्कृत विश्वविद्यालय दिल्ली के दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर रहे हैं। उनका लेख पठनीय है।]

योगदर्शन एक ऐसा दर्शन है जिसके बिना किसी भी दर्शन का काम नहीं चल सकता। यद्यपि प्रत्येक दर्शन का अपना लक्ष्य होता है तथा सभी दर्शन अपने-अपने लक्ष्य की पूर्ति करते ही हैं। अतः सभी दर्शनो का सार्थक्य भी सिद्ध होता है। किन्तु ''आत्मा वाऽरे दृष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'' इस श्रुति के अनुसार आत्मा का साक्षात्कार करना परम लक्ष्य है तथा उसी साक्षात्कार के लिए श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन जरूरी है इसके लिए भी श्रुति स्पष्ट करती है कि ''श्रोतव्यः श्रुति वाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोप पत्तिभिः। मत्वा च सततन्ध्येयः एतेदर्शनहेतवः।'' तात्पर्य यह है कि वेदवचनों से आत्मतत्त्वविषयक निखिल वृत्त का श्रवण करना चाहिए और दर्शन शास्त्रों की युक्तियों से तद्विषयक खूब मनन करना चाहिए इस तरह मननपूर्वक जिस स्वरूप का बोध होता है, उस तत्त्व का मनन करके अनवरत चिन्तन करना चाहिए, ये सभी साक्षात्कार के कारण हैं। भाव यह है कि बिना निदिध्यासन के श्रवण व मनन की परिपक्वता नहीं होती और ऐसा श्रवण व मनन भी किस काम का जिससे साक्षात्कार न हो सके। साक्षात्कार तभी सम्भव है जबकि विधि-पूर्वक अभ्यास एवं वैराग्य से चित्तवृत्ति को निरुद्ध किया जाये। एतदर्थ योग ही सम्बल है।

भारतीय दार्शनिकों ने नैकधा दर्शनों की गणना की है किन्तु सर्वसम्मत परिसङ्ख्यान यही है कि तीन नास्तिक दर्शन तथा तीन आस्तिक दर्शन हैं। जो कि चार्वाकदर्शन, जैनदर्शन, बौद्धदर्शन, न्यायवैशेषिक दर्शन, साङ्ख्ययोग दर्शन एवं पूर्वोत्तरमीमांसादर्शन कहलाते हैं। इन सभी का चरम लक्ष्य मोक्ष ही है। यह बात अलग है कि ये सभी दर्शन मोक्ष की समुपलब्धि के विषय में पृथक्-पृथक् रूप से व्याख्यान करते हैं, किन्तु पारमार्थिक दृष्टि से विचार किया जाये, तो प्रतीत होता है कि सभी स्वस्वत्वानुभूति को ही मुक्ति मानते हैं। यद्यपि करने का प्रकार सभी का अपने अपने ढंग का ही है।

कुछ आचार्य छः नास्तिक एवं छः आस्तिक दर्शन मानते हैं। उनकी दृष्टि में 1. चार्वाकदर्शन, 2. जैनदर्शन, 3. वैभाषिक बौद्धदर्शन, 4. सौत्रान्तिक बौद्धदर्शन, 5. योगाचार बौद्धदर्शन, 6. माध्यमिक बौद्धदर्शन, 7. न्यायदर्शन, 8. वैशेषिक दर्शन, 9. सांख्यदर्शन, 10. योगदर्शन, 11. मीमांसादर्शन, 12. वेदान्तदर्शन, ये बारह दर्शन हैं जिनमें से प्रथम छः दर्शन चार्वाक से माध्यमिक बौद्ध तक वेद को प्रमाण नहीं मानते हैं, अतः नास्तिक दर्शन कहलाते हैं; तथा न्यायदर्शन से वेदान्त दर्शन तक के छहों दर्शन वेद को प्रमाण के रूप में स्वीकृत करते हैं अतः आस्तिक दर्शन

कहलाते है।

जो भी हो दर्शन शब्द ही स्पष्ट करता है कि बिना साक्षात्कार के दर्शनों के दर्शनत्व ही नहीं रहता और दर्शन के बिना योग सम्भव नहीं। अतः ज्ञान आप किसी भी दर्शन के माध्यम से करें किन्तु निःसन्दिग्ध तत्त्वज्ञान तो साक्षात्कार से ही होगा और उसके लिए एकमात्र योग ही सम्बल बनेगा। इसीलिए श्रुति कहते हैं—''ऋत ज्ञानान्त मोक्षः'' बिना ज्ञान के मोक्ष नहीं हो सकता और ज्ञान वही सच्चा ज्ञान है जो निःसन्दिग्ध हो। तदर्थ एकमात्र योग का सहारा लेना ही पड़ेगा। इतना ही नहीं बिना योग के तो मानव में मानवता भी कहाँ रहेगी। योग का पहला अंग है यम! जिसका स्वरूप है ''अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः'' अर्थात् प्राणिमात्र को कभी भी किसी भी परिस्थिति में किसी भी तरह का कोई भी कष्ट नहीं पहुँचाना अहिंसा होती है। जो बात जिस रूप में है उसे उसी स्वरूप में वाणी द्वारा प्रकट करना ''सत्यं यथार्थे वाङ् मनसो'' जैसा देखा, वैसा अनुमान किया, जैसा सुना ठीक वैसा ही मन में हो तथा वैसा ही वाणी में आये तो वह सत्य कहलाता है। जो कि प्राणिमात्र की भलाई के लिए प्रयुक्त हो। दूसरों के द्रव्यों की बिल्कुल आकांक्षा नहीं करना तथा केवल शास्त्रविधि पूर्वक स्वस्वत्व निवृत्तिपूर्वक दान दी हुई वस्तु को भी आवश्यक होने पर ही स्वीकार करना तथा उसका संग्रह नहीं करना ही किसी भी परिस्थिति में किसी अन्य व्यक्ति की अनुमति बिना कोई भी चीज अपने उपयोग में न लेना सच्चा अस्तेय है। सामान्यतः चोरी नहीं करना अस्तेय कहलाता है किन्तु योगदर्शन के अनुसार किसी व्यक्ति की जानकारी में तथा उसके द्वारा प्रदत्त वस्तु भी तब तक चोरी की मानी जायेगी जब तक कि उसे वह शास्त्र विधिपूर्वक आपको दान नहीं करता। ब्रह्मचर्य का पालन करना तथा शब्द स्पर्शरूप रसगन्धात्मक पाँचों विषयों के संकलन करने में कष्ट, यदि प्राप्त होते हैं तो उनकी रक्षा करने में कष्ट, रक्षा करते-करते भी नष्ट होने का भय, और उन विषयों के सानिध्य के कारण उनमें विशेष आसक्ति का भय तथा उन विषयों के लिए विशेष रूप से लालायित अन्य लोगों का दिल दुखाने की हिंसा के बिना उनकी प्राप्ति सम्भव नहीं, अतः इन सभी कारणों को ध्यान में रखकर उनसे सर्वथा दूर ही रहना अपरिग्रह कहलाता है।

इस तरह योग के आठ अंगों में से केवल एक अंग यममात्र का भी सही माने में पालन कर लिया जाए तो मानव में मानवता आ जाये। तथा फैलती हुई नृशंस दानवता की परिसमाप्ति हो और आज जो संसार में आतंक छाया हुआ है, वह सर्वथा शान्त हो जाय। अतः यम का पालन नितान्त आवश्यक है।

इसी तरह ''शौच-सन्तोष-तपः-स्वाध्यायेश्वर-प्रणिधानानि नियमाः'' सूत्रानुसार पूर्ण पवित्रता रखें, यथालाभ सन्तुष्ट रहें, अपने शरीर को कष्ट हो तो भी उसे सहन कर लें, किन्तु अन्य किसी को कष्ट नहीं पहुँचायें। मोक्षशास्त्रों का अनुशीलन करें तथा प्रणवादि मन्त्रों का जप करें। साथ ही परमात्मा पर पूर्ण विश्वास रखते हुए अपने आपको प्रभुचरणों में अर्पित कर दें, तो ऐसी स्थिति में सभी सर्वदा निश्चित ही सानन्द स्व-स्व जीवनयापन कर सकते हैं। इन नियमों का पूर्णतः

पालन हो तो संसार में सभी प्रकार से शान्ति का साम्राज्य हो जाय तथा निखिल विभीषिकाओं की स्वप्न में भी सम्भावना न रहे।

आज संसार के अधिसंख्य प्राणी ''शरीरं व्याधिमन्दिरम्'' के शिकार हो रहे हैं। यदि योग में निर्दिष्ट आसनों का विधिपूर्वक आचरण करें तो उपस्थित सभी रोग नष्ट हो जावें तथा आसन करने वाले को तो कोई रोग हो ही नहीं सकते। किन्तु आसन पूर्णतः गुरु निर्दिष्ट विधि से गुरु के सानिध्य में ही किये जाने चाहिए। क्योंकि आसन गलत होने पर हानिप्रद भी हो सकते हैं। किन्तु यदि सही ढंग से किये जायें तो निश्चित रूप से सभी रोगों को समूल नष्ट कर सकते हैं।

''प्राणायामैर्दहेद्दोषान्'' इस वचन के अनुसार विधिपूर्वक नियमित रूप से प्राणायाम करता रहे तो वात-पित्त-श्लेष्मा में उपस्थित सभी गड़बड़ियाँ सर्वथा भस्म हो जाती हैं। एकाग्र चित्तवृत्ति से प्राणायाम करना परमाभिप्रेत है। ''तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः''। इस सूत्र के अनुसार आसन सहज हो जाय, तब शास्त्रोक्त विधि से स्वाभाविक वायु की गति रोकना ही प्राणायाम कहलाता है। क्योंकि पूरक में वायु की गति कोष्ठ में होती है तथा रेचक में भी कोष्ठय वायु की गति बाहर होती है, तथापि वह विशेष विधि से होती है। इसलिए सामान्य गति में रुकावट होने से वह भी प्राणायाम ही कहलाता है। क्योंकि उस स्थिति में भी प्राणवायु का आगमन तो होता ही है। वस्तुतः केवल कुम्भक, प्राणायाम ही परम लक्ष्य रहता है और उसी के लिए रेचक पूरक की सहायता ली जाती है। अभ्यास हो जाने पर केवल कुम्भक सम्पन्न हो जाता है। उसमें सर्वथा गति-विच्छेद होता है और उसे भी सगर्भ करना चाहिए अर्थात् दृष्टिस्वरूप का चिन्तन करते हुए करना चाहिए। ऐसी स्थिति में ''ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्'' सूत्रानुसार प्रकाशशील सत्व पर आपतित सम्पूर्ण आवरण नष्ट हो जाते हैं तथा ज्ञान का प्रकाश प्रकाशित होने लगता है। लिखा भी है कि-''तपो न परं प्राणायामात्ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्येति''। भाव यह है कि प्राणायाम से बढ़कर अन्य कोई तपश्चर्या नहीं है, क्योंकि इससे शनैः शनैः सम्पूर्ण मल नष्ट हो जाते हैं तथा ज्ञान में निखार आ जाता है। मनुस्मृति भी कहती है-

दह्यन्ते ध्मायमानानां,
धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः,
प्राणस्य निग्रहात्।।

जैसे सभी धातुओं की गन्दगी उन्हें तपाने पर जल जाती है तथा सभी धातु अपने सही स्वरूप में निखर जाते हैं। उसी तरह इन्द्रियों में समुद्भूत निखिल दोष प्राणायाम के प्रभाव से दग्ध हो जाते हैं तथा ज्ञान का प्रकाश स्वाभाविक रूप से निखर जाता है। कहने का भाव है कि ऐहिक एवं आमुष्मिक दोनों ही दृष्टियों से प्राणायाम हमारे लिए परमोपयोगी साधन है। इसी के माध्यम से मानवों के मन में रहने वाला मालिन्य साफ हो सकता है तथा तत्त्व-ज्ञान का प्रकाश प्राप्त कर मानव अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सकता है।

प्राणायाम का पूर्ण लाभ तब तक नहीं मिल सकता, जब तक प्रत्याहार न किया जाए। अतः योगी के लिए जितेन्द्रिय होना भी नितान्त आवश्यक है। प्रत्याहार का लक्षण दिया है–''स्व विषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।'' भाव यह है कि जब भोग्य विषयों का प्रयोग नहीं किया जाय तो चित्त अपने मूल स्वरूप में स्वस्थावस्थापन्न हो जाता है अर्थात् इन्द्रियों की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती है। यह बात शब्द की व्युत्पत्ति की दृष्टि से भी स्पष्ट हो जाती है। ''प्रति आह्रियन्ते इन्द्रियाणि यस्मिन् सोऽयम्प्रत्याहारः।'' भाव यह है कि इन्द्रियाँ वापिस ग्रहण कर ली जाती हैं, वही प्रत्याहार है। आगे भगवान् पतंजलि जी ने भी स्पष्ट किया है कि–''ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्''। तात्पर्य यह है कि प्रत्याहार कर लेने से इन्द्रियों की सर्वोत्कृष्टवश्यता हो जाती है। योगी के लिए जितेन्द्रिय होना भी नितांत आवश्यक है। लिखा है कि–

इन्द्रियाणां हि सर्वेषां
यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।
तेनास्य द्रवते प्रज्ञा,
दृते पादादिवोदकम्।।
पिबन्निव च चक्षुर्भ्यां,
पादौ संवाहन्निव।
चितेन्द्रियैक्यतो ध्यायेत्त–
न्मूर्ति विजितेन्द्रियम्।।

प्रत्याहार के पश्चात् धारणा–ध्यान–समाधि पूर्वक सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञात समाधि की स्थिति को प्राप्त कर योगी क्रमशः स्वरूपावस्थिति को प्राप्त करता है। क्योंकि स्वरूपावस्थिति ही योग है, वही समाधि है, वही परम लक्ष्य है। भगवान् पतञ्जलि ने भी लिखा है कि–''तदा द्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम्।'' भाव यह है कि समाधि के समय योगी की आत्म–ज्योति स्वरूपावस्थित हो जाती है। उस समय विषयाकाराकारित बुद्धि के प्रतिबिम्बात्मक भोग से भी वह मुक्त हो जाता है। क्योंकि गुणों की सृष्टि केवल परम पुरुषार्थ मोक्ष का प्रतिपादन करने के लिए ही होती है। पुरुषार्थ शून्य गुण वापिस प्रकृति में लीन हो जाते हैं और गुणों से मुक्त निर्गुण आत्मा कैवल्य की स्थिति का लाभ करता है।

पारमार्जित दृष्टि से तो अपरिणामी नित्य एकरस होने के हेतुवश आत्मा कभी बन्धन में होता ही नहीं और जो बद्ध ही नहीं हुआ तो मोक्ष कैसा? किन्तु प्रतिबिम्बात्मक भोग स्वीकृत करके जो ''वृत्तिसारूप्यमितरत्र'' सूत्र द्वारा सांसारिक स्थिति में समाधि के अतिरिक्त समय में जो विषयाकाराकारित बुद्धि की सारूप्यता मानी गई है, वह भी निवृत्त हो जाती है और इस तरह नित्यमुक्त आत्म–ज्योति भी सर्वथा मुक्त हो जाती है।

प्रत्येक दर्शन का परम लक्ष्य एकमात्र कैवल्य ही है और अपनी आत्म–ज्योति का दर्शन

कराने के कारण ही ये सभी शास्त्र दर्शन कहलाते है। सभी दर्शनों का पारमार्थिक दृष्टि से मोक्ष प्राप्ति ही लक्ष्य है और उसके लिए साक्षात्कारात्मक सच्चा ज्ञान परमाभिप्रेत होता ही है, क्योंकि जिसे किसी ने स्पष्ट रूप से देखा ही न हो और उसके विषय में कहे कि मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ तो यह कथन व्यावहारिक जगत में भी असत्य ही माना जायगा। अतः सभी दर्शनों को एतदर्थ योग का सम्बल परमावश्यक हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बिना योग के साक्षात्कार सम्भव नहीं और बिना साक्षात्कार के दर्शनों का दर्शनत्व ही नहीं रहता है। इसलिए योगदर्शन ही सभी दर्शनों का सम्बल है। यह कहना सर्वथा युक्तियुक्त ही है।

।। जय गुरुदेव।।

योग प्रचार एवं आध्यात्म

योगेन चित्तस्य पदेन वाचा
मलं शरीरस्य च वैद्यकेन
यो अपाकरोत तं प्रवरं मुनिनाम
पतञ्जलिम् प्राञ्जलिरानतोऽस्मि

हे महायोगी पतञ्जलि जी आपको मेरा हाथ जोड़ कर प्रणाम है जिन्होंने योग दर्शन में वर्णित योग साधनों के द्वारा चित्त के मल को दूर किया है। संस्कृत व्याकरण में महर्षि पाणिनि के सूत्र पर महा भाष्य लिख कर सूत्रों के अर्थ को स्पष्ट किया है। वैद्यक शास्त्र में भी अपने अमूल्य योगदान देकर आयुर्वेद शास्त्र को मुकुट मणि प्रदान किया है।

ऐसे महान दर्शनकार पतञ्जलि योगर्षि को मैं प्रणाम करता हूँ। आपने शरीर, वाणी तथा चित्त के मल को दूर किया है।

योग प्रचार में यदि आध्यात्म का समावेश नहीं है तो प्रचार अधूरा है। मेरे गुरुदेव योगेश्वर चन्द्रमोहन महाराज जी ने सदा ही विशुद्ध अध्यात्म योग का प्रचार किया है। विद्या वही है जो जीव को मुक्ति प्रदान करें।

''विद्या सा या विमुक्तये''। हमारे गुरुदेव ने इस मंत्र को सदा ही सामने रखा है।

आज प्रचार-योग का काफी लोग कर रहे हैं। जिसमें बहुतायत व्यवसायिक दृष्टिकोण दिखाई दे रहा है। आध्यात्म एकरस रहने वाली तथा समय के साथ बदलने वाली वस्तु नहीं है। यह सत्य है कि स्वास्थ्य को ठीक रखकर ही हम योग में आगे बढ़ सकते हैं किन्तु स्वास्थ्य तक ही सीमित रह जायें यह उचित नहीं है।

मनुष्य स्वस्थ रहना चाहता है ताकि दुनिया का आनन्द ज्यादा दिन तक ले सके किन्तु दुःखों से निवृत्ति का ठोस उपाय समझ कर उस मार्ग पर डटकर चलने पर ही मनुष्य का कल्याण हो सकता है। आध्यात्म पूर्णतया सत्य से जुड़ा मार्ग है, कामनाओं के त्याग का मार्ग है। अखंड आनन्द प्राप्ति का मार्ग है इसे ही योग कहते हैं। अतएव इसे आध्यात्म योग कहा गया है। दुःखों से निवृत्ति ही योग साधना का लक्ष्य है अतः इस लक्ष्य को मनुष्य कभी न भूले। हर समय लक्ष्य सामने रखकर जीवन को उच्चतम लक्ष्य की ओर ले जाये।

सिद्धयोग मासिका (पत्रिका) का विवरण
फार्म नं. 4

1. प्रकाशन का स्थान	–	श्री सिद्धगुफा, संवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)
2. प्रकाशन का अवधि क्रम	–	मासिक
3. मुद्रक का नाम	–	दासलाल शर्मा
राष्ट्रीयता	–	भारतीय
पता	–	श्री सिद्धगुफा संवाई, आगरा (उ.प्र.)
4. प्रकाशक का नाम	–	दासलाल शर्मा
राष्ट्रीयता	–	भारतीय
पता	–	श्री सिद्धगुफा संवाई, आगरा (उ.प्र.)
5. सम्पादक का नाम	–	दासलाल शर्मा
6. स्वत्वाधिकारी	–	दासलाल शर्मा

मैं दासलाल शर्मा एतद् द्वारा यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य है।

30 जनवरी, 2016

दासलाल शर्मा

कृते, सिद्धगुफा प्रकाशन, सवांई (एत्मादपुर), आगरा

●●●

अमृतकण

प्रणवो धनु: शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।।

मुण्डकोपनिषद् 2/4

वहाँ ओंकार ही धनुष है, आत्मा ही बाण है और परब्रह्म परमेश्वर ही उसका लक्ष्य कहा जाता है। वह प्रमाद रहित मनुष्य द्वारा ही बींधा जाने योग्य है। अतः उसे भेजकर बाण की तरह उस लक्ष्य में तन्मय हो जाना चाहिये।

● ● ●

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।

(गीता 16/23)

जो वेद शास्त्र विहित विधि को छोड़कर (कामना से प्रेरित होकर) मनमाना काम करते हैं, उनको न तो फल की सिद्धि होती है, न सुख मिलता है, न मोक्ष की ही प्राप्ति होती है।

● ● ●

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।।

(गीता 8/15)

श्री भगवान के शरणापन्न होने पर दुःखों के कारणभूत क्षणभंगुर पुनर्जन्म को अर्थात् संसार को महापुरुष प्राप्त नहीं होते। परम सिद्धि अर्थात भगवत्-लोक को प्राप्त कर लेते हैं। वहाँ से फिर संसार में आना ही नहीं होता।

● ● ●

योगयुक्त्या तु तद्भस्म दलाव्यमानं समन्ततः।
शाक्तेनामृतवर्षेण ह्यधिकारान्निवर्तते।।

(बृहज्जाबाल)

जो योगानुष्ठान के द्वारा शक्ति की अमृत वर्षा से उस भस्म को चारों ओर से प्लावित कर देता है वह प्रकृति के अधिकार से मुक्त हो जाता है।

Postal Regd. No.: Agra 19/18-20

MAY 2018

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
मँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

अर्थात् : जो जिस भाव से मेरी शरण ग्रहण करते हैं, उसी के अनुरूप मैं उन्हें फल देता हूँ हे पार्थ ! प्रत्येक व्यक्ति सभी प्रकार से मेरे पथ का अनुगमन करता है।